अध्याय–6

कृषि के क्षेत्र में हाल के रुझान

6.1 जैविक खेती (Organic cultivation)

टिकाऊ कृषि के लिए कई विकल्पों में से एक अति महत्वपूर्ण विकल्प है जैविक कृषि। जैविक कृषि के सिद्धांत में फसल का उत्पादन ऐसी विधियों द्वारा लिया जाए जो कि प्रकृति द्वारा दिए गए संसाधनों का उपयोग करते हुए प्राकृतिक प्रणाली को हानि पहुंचाए बगैर, प्रकृति के साथ मिलकर कार्य कर सकें। विगत साठ - सत्तर वर्षो में रासायनिक खादों के लगातार एवं असंतुलित प्रयोग से उपज में वृद्धि तो हुई है लेकिन इसके साथ ही पर्यावरण का ह्रास एवं मिट्टी के स्वास्थ पर बुरा असर हुआ है। आजकल उपज स्थिर न रहकर कम होती जा रही है। साथ ही उत्पादन लागत भी बढ़ रही है। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 600 मिलियन टन फसल अवशेष, गोबर एवं अन्य जैविक अवशेष प्राप्त होता है जिसमें से अधिकांश का समुचित उपयोग नहीं किया जाता है। जैविक खेती फसल उत्पादन की वह प्रणाली है जिसमें मुख्यतः जैविक स्रोतों से उपलब्ध घटकों को प्राथमिकता दी जाती है एवं फसलों की उत्पादकता बनाये रखते हुए स्वपोषित (Sustainable) खेती की जाती है। जैविक खेती में संश्लेषित या रासायनिक उर्वरकों, कीट व रोग नाशकों, खरपतवार नाशकों तथा बढ़वार नियंत्रकों का प्रयोग नहीं किया जाता है। केवल कुछ रसायनों का प्रयोग सीमित मात्रा में जीवन रक्षक उपायों के रुप में किया जाता है। भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने एवं उचित फसल बढ़वार हेतु यथासंभव फसल अवशेष, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, प्राकृतिक खनिज तथा जैविक कीट व व्याधि नियंत्रण उपायों का उपयोग किया जाता है। जैविक उत्पादों का बाजार मूल्य साधारण उत्पादों की अपेक्षा अधिक होता है। साथ ही राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर इसकी मांग बढ़ती जा रही है।

6.1.1 जैविक खेती में प्रयुक्त विभिन्न प्रौद्योगिकी

फसलों का अच्छा उत्पादन लेने के लिए, जैविक खेती में कई तरह की तकनीकी का उपयोग किया जाता है, जिसमें कुछ निम्न है –

(1) सीधी धूप और वर्षा से भूमि की रक्षा :

सीधी धूप यदि भूमि पर पड़ती है तो उसका उपजाऊपन बहुत तेजी से कम होता है। खेत में उपस्थित जैविक पदार्थ धूप से नष्ट हो जाती है तथा कई लाभदायक जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। खेती में धूप की जरुरत तो होती है लेकिन थोड़ी मात्रा में। इसी प्रकार, वर्षा का पानी यदि सीधे गिरता है तो भूमि का कटाव होता है और भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत बह जाती है। अतः भूमि को ढ़ककर रखना चाहिये जिसके उपाय निम्न है :

(अ) खेत में वृक्ष लगााकर : इसमें उपयोगी वृक्षों को उचित संख्या में फसलों की कतारों के बीच, मेड़ पर या वायुरोधक पट्टी के रुप में लगाया जाता है ताकि इन वृक्षों का धूप, पानी, खाद के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा न हो। ये वृक्ष सीधी धूप और वर्षा को धरती पर आने से रोकते हैं, साथ ही इनकी पत्तियाँ जो धीरे–धीरे झड़ती हैं जमीन पर गिरकर पहले उसे ढ़ककर रखती है और बाद में खाद बन जाती है। वृक्ष, मिट्टी को बहने और उड़ने से रोकते हैं और जमीन की सुरक्षा करते हैं।

(ब) पलवार या मल्च का प्रयोग : फसल अवशेष को भूमि पर बिछाकर पलवार बनाया जाता है। इसकी मोटाई 5–10 से.मी. होना जरुरी होता है, पलवार धीरे–धीरे खाद बन जाता है। अतः साल में एक या दो बार नया पलवाार बिछा देना चाहिए। कभी भी प्लास्टिक या पोलीथीन शीट का प्रयोग पलवार में नही करना चाहिए, क्योंकि इससे भूमि में वायु संचारण में कमी तथा भूमि तापमान में अधिक वृद्धि होने से लाभदायक जीवाणु मर सकते हैं। पलवार बिछाने से खरपतवार की समस्या भी कम हो जाती है।

(2) जैविक खादों को अधिक उपयोगी बनाना :

अक्सर किसान किसी गोशाला के पास जमा गोबर के ढ़ेर से ट्राली भरकर खेत में डाल देते हैं और समझते हैं कि खाद दे दिया। वास्तव में यह गोबर कई दिनों तक खुली हवा–धूप में पड़ा रहता है जिससे इसके कई पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। साथ ही इसकी सड़न सही नहीं होने के कारण खेत में गोबर जाते ही दीमक लग जाती है। कई खरपतवार के बीज इस बिना सड़े गोबर के साथ खेत में फसल के साथ उगकर समस्या बन जाते हैं। खाद बनाने के कई तरीके विकसित किये गये हैं जो उपलब्ध फसल अवशेष, गोबर की मात्रा तथा खाद बनाने के समय पर आधारित है। इनमें मुख्य तरीके निम्न हैं –

(अ) गोबर गैस संयत्र से उपलब्ध खाद : केवल गोबर से खाद बनाने का सर्वोतम तरीका गैस बनाकर उपयोग करने में है। इससे ईंधन के रुप में गैस के साथ स्लरी के रुप में गोबर की खाद भी प्राप्त होती है। असिंचित क्षेत्रो में 5 टन व सिंचित क्षेत्रो में 10 टन प्रति हेक्टर स्लरी के प्रयोग से उत्पादन में 10-20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

(ब) गोबर व फसल अवशेष के मिश्रण से खाद बनाना : फसल अवशेष व गोबर की अलग–अलग परत बनाकर या मिलाकर जमीन के अन्दर गड्ढा बनाकर इन्दौर, बंगलौर आदि विधि से या जमीन के ऊपर ईंटों की चारदीवारी बनाकर नडेप विधि द्वारा खाद बनाई जाती है। जैसे–जैसे फसल अवशेष व गोबर उपलब्ध होता है, गड्ढ़े या टाँके में इनकी परत लगाते जाते हैं और अन्त में गड्ढा या टाँका भरने पर मिट्टी से लेप कर इसे बन्द कर देते हैं। गड्ढ़े में खाद 20–150 दिनों में तैयार होती है और टॉका खाद 90–120 दिनों में तैयार हो जाती है। दो बातें जो खाद का पोषक मान बढ़ाती है, वे हैं (i) सिर्फ गोबर की खाद बनाने की बजाय उसमें विभिन्न फसलों के अवशेष मिला कर खाद बनाई जाय तो वह ज्यादा संतुलित व पौष्टिक होगी। (ii) खाद बनाते समय उसमें रॉक फासफेट या हट्टी का चूरा मिलाने से एक ओर जहाँ खाद में फास्फोरस की मात्रा बढ़ती है वहीं दूसरी ओर नेत्रजन का क्षरण भी रुकता है। इस प्रकार तैयार खाद को फास्फो–कम्पोस्ट कहते हैं।

(स) वर्मी कम्पोस्ट या केचुऐ की खाद : देशी केचुऐ खेत में हमेशा से पाये जाते हैं किन्तु रासायनिक खाद और कीटनाशक के जहर से इनकी संख्या भूमि में बहुत कम हो गई है। ये केचुऐ फसल अवशेषों व अन्य कार्बनिक पदार्थों को खाकर छोटी–छोटी गोली जैसी खाद बनाते हैं। इसके अलावा खेत की ट्रेक्टर से भी बढ़िया जुताई स्वतः ही कर देते हैं। इसलिए इन देशी केचुऐं की संख्या खेत में अवश्य बढ़ानी चाहिए। केचुऐ की कुछ विशेष प्रजाति गोबर व अन्य कार्बनिक पदार्थों को तेजी से खाकर इसका खाद बना देती है जिसे वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। इसे तैयार होने में 1–4 माह लगता है। यह खाद कम्पोस्ट से 5–7 गुना ज्यादा लाभकारी होता है, क्योंकि इसमें केचुऐं द्वारा फसल बढ़वार के लिए और रोग से लड़ने के लिए कुछ रसायन मिला दिये जाते हैं।

वर्मी वाश : केचुऐ की खाद का अर्क जिसे वर्मी वाश कहते हैं, केंचुऐ द्वारा बनाई जा रही खाद पर लगातार थोड़ा पानी टपकाकर तथा रिसते पानी को जमा कर बनाया जा सकता है। वर्मी वाश का सब्जी–फलों के पौधों पर छिड़काव से फल–फूल अच्छे लगते हैं और रोग कम लगते हैं।

(3) फसल चक्र :

प्रत्येक किसान को अपने पास उपलब्ध भूमि के चार हिस्से कर इस प्रकार फसल चक्र अपनाना चाहिए कि प्रत्येक हिस्सा चौथे वर्ष अगर संभव हो तो परती छोड़ दिया जाये और उसमें चारे वाली फसलें उगाकर पशुओं को चराया जाये और उनका मल–मूत्र खेत में ही छोड़ दिया जाए। इससे जमीन को आराम मिलेगा और उपजाउपन कई गुना बढ़ जाएगा। साथ ही कीड़े–रोग–खरपतवार का भी चक्र टूटने से उनका प्रकोप बहुत कम हो जायेगा। फसलों का चयन किसानों को अपनी और बाजार की आवश्यकता को समझकर तथा निम्न दो बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए –

(i) प्रतिवर्ष एक दलहनी फसल अवश्य ली जाये

(ii) तीन वर्ष में कम से कम एक बार दो माह के लिए हरी खाद (ढ़ैचा, लोबिया आदि) अवश्य ली जाय।

(4) जीवाणु खाद (बायो फर्टिलाइजर) का प्रयोग :

प्रकृति में अनेक तरह के लाभदायक जीवाणु स्वयं ही अपना समूह उचित स्तर तक बनाये रखते हैं किन्तु खेती में हमने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से इन्हें लगभग नष्ट ही कर दिया है। अतः इन जीवाणुओं की संख्या बढ़ाना, स्वस्थ व कम लागत की खेती के लिये आवश्यक है। ये जीवाणु हवा से नेत्रजन स्थापित करना (*राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पारेलियम,* एजोला), भूमि में मौजूद फास्फोरस पौधों को उपलब्ध करना (पी.एस.बी., वैम) तथा कई अन्य तरह के कार्य करते हैं। एक किलोग्राम राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से लगभग 100 किलोग्राम नेत्रजन व 1 किलोग्राम एजोटोबेक्टर के प्रयोग से 40 किलोग्राम नेत्रजन की बचत होती है। इस प्रकार जीवाणु खाद के प्रयोग से 10–25 प्रतिशत उपज में वृद्धि हो सकती है।

(5) हरी खाद :

वैसे जैविक खाद (कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट) फसल की आवश्यकताओं को पूरा करने में बहुत हद तक समर्थ हैं फिर भी कई बार जैविक खाद की उपलब्धता कम होती है तथा खल्ली पशु आहार में काम ली जाती है। ऐसे में भूमि और फसल की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हरी खाद एक अच्छा उपाय है। सनई, ढ़ैचा, जंगली नील आदि का उपयोग सीधे हरी खाद के रुप में किया जाता है जबकि मूंग, उड़द, लोबिया आदि का उपयोग सीधे या उपज लेने के बाद किया जाता है। हरी खाद के उपयोग से 75–80 क्विंटल जैव पदार्थ के साथ–साथ 40–60 किलोग्राम नेत्रजन प्रति हेक्टर जमीन को 30–45 दिनों में मिल जाते हैं। अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ जाती है। लवणीय व क्षारीय मृदा का सुधार होता है। मिट्टी की भौतिक दशा सुधरती है यानि वायु संचार एवं जल धारण क्षमता सुधरती है। हरी खाद के साथ कई खरपतवार भी उग आते हैं किन्तु बढ़ नहीं पाते अतः बाद वाले फसल में कम खरपतवार होते हैं।

(6) जल प्रबन्धन :

भूमि के बाद जल कृषि उत्पादन हेतु सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। जल के तीन प्रमुख स्रोतों यथा वर्षा जल, भू–जल एवं नदी, तालाब, नहर से प्राप्त होने वाले जल में से वर्षा जल सर्वोतम होता है क्योंकि यह शुद्ध होता है और सभी तरह के सामाजिक, राजनैतिक बन्धनों से मुक्त होता है। अतः सर्वप्रथम वर्षा जल का संचयन व संरक्षण का उपाय करना चाहिए। समतल भूमि में नाली–मेढ़ बनाकर वर्षा जल का संचयन किया जा सकता है। खेत में वृक्ष अवश्य हों ताकि वर्षा की बूँदें धीमी गति से भूमि पर गिरे और वृक्ष की जड़ें भूमि में जल को रोक सके। खेत की मृदा में जैविक खाद पर्याप्त मात्रा में हो ताकि भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ सके। भूमि को ढ़ककर रखने से जल के वाष्पीकरण की हानि काफी कम की जा सकती है। पलवार और सस्य वानिकी इसके लिए उपयोगी हैं। जल के उचित उपयोग के लिए फसल की क्रांतिक वृद्धि अवस्था पर आवश्यक मात्रा में पानी देना चाहिए। साथ ही फसल चक्र इस प्रकार का हो कि आधी फसलें अधिक जल चाहने वाली जल व आधी कम जल चाहने वाली हों। समय पर निराई–गुड़ाई करने से भूमि की पपड़ी टूट जाती है और खरपतवार भी निकल जाते हैं जिससे जल की हानि कम हो जाती है।

(7) खेती के सहयोगी जीवों (पशु, पक्षी, मछली, मधुमक्खी इत्यादि) का पालन :

खेती हेतु जैविक खाद की आवश्यकता को पशुपालन से बहुत अच्छी तरह नियमित रुप से पूरा किया जा सकता है। पशु मुख्यतः गाय, भैंस आदि फसल अवशेष का सदुपयोग करके अपशिष्ट के रुप में गोबर प्रदान करते हैं जिसे बायोगैस संयंत्र में डालकर 7–15 दिन में ही स्लरी खाद ले सकते हैं। पशु मूत्र भी नेत्रजन का अच्छा स्रोत है तथा गाय का मूत्र तो फसलों के रोग–कीट नियंत्रण में भी बहुत उपयोगी है, बैल से जुताई, ट्रेक्टर की अपेक्षा कई गुना सस्ती व लाभप्रद होती है। अधिकांश पक्षियों की पहली पसन्द कीट ही होते हैं और यदि उपलब्ध हों तो पक्षियों का भोजन 90–95 प्रतिशत हिस्सा कीट ही होते हैं। अतः खेत में कीटनाशकों के छिड़काव की जगह पक्षियों को बैठने के लिए खेतों में खूँटी लगाकर हम यों ही इनसे कीट नियंत्रण का कार्य करा सकते हैं। जहाँ पानी की उपलब्धता अधिक होती है वहाँ धान के साथ मछली पालन किया जा सकता है। मछलियाँ धान पर लगने वाले कई कीटों के लार्वा खा जाती हैं, साथ ही धान का उत्पादन बढ़ाने में सहयोग करती है। मधुमक्खी का स्थान लाभदायक कीटों में सबसे उपर है क्योकि ये परागण करके अच्छे बीज/फल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है और फसलों को कई तरह की बीमारियों से बचाती है।

(8) कीट–रोग एवं खरपतवार प्रबन्धन :

(i) फसल विशेष के कीटों व रोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करना एवं उनकी पहचान करना

(ii) फसल की निगरानी करते रहना एवं इस बात का ध्यान रखना कि कौन सा कीट या रोग कितनी संख्या में आ रहा है

(iii) गर्मियों में गहरी जुताई करना

(iv) कीट व रोग रोधी प्रजातियों की बुआई करना

(v) उचित फसल चक्र अपनाना

(vi) कीटों को आकर्षित करने वाली फसल को मुख्य फसल के पास लगाना एवं उचित समय पर आकर्षित करने वाली फसल को काट लेना

(vii) शत्रु एवं मित्र कीटों की पहचान करना या मित्र कीटों का प्रयोग करके जैव नियंत्रण को बढ़ाना

(viii) कीटों एवं बीमारियों से युक्त पौधों का निष्कासन एवं उनको नष्ट करना

(ix) खरपतवारों का यांत्रिक विधियों से निष्कासन

(x) नीम, करंज, महुआ आदि की खल्ली का मृदा में नियमित प्रयोग करना

(xi) कीटों की संख्या निर्धारित आर्थिक स्तर से अधिक होने पर कृषि विशेषज्ञ की सलाह पर उचित प्रबन्ध उपायों का प्रयोग करना

(xii) कीट नियंत्रण में वानस्पतिक कीटनाशकों का नियमित प्रयोग करना

(xiii) जैविक खाद की उचित मात्रा का उचित समय पर प्रयोग करना

(xiv) उचित बीज दर एवं पौध अंतरण को अपनाना, सही समय पर फसल की बुआई एवं उचित समय पर सिंचाई करना

(xv) मित्र कीट ट्राइकोग्रामा एवं मित्र फफूंद ट्राइकोडर्मा कल्चर का उपयोग करना

(xvi) फेरोमेन ट्रैप एवं गोमूत्र का उपयोग भी कीट नियंत्रण में लाभदायक है

(9) संरक्षित खेती :

संरक्षित खेती में विशेष कर फसल अवशेष को खेत में ही सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है जो मिट्टी में मिलकर मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में वृद्धि करते हैं। खेती में शून्य जुताई के उपयोग से जहाँ एक ओर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है वहीं मजदूर व डीजल के कम उपयोग के कारण उत्पादन लागत में कमी होती है। कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मिट्टी में विभिन्न जीवाणु, फफूंद एवं केचुआ आदि की संख्या बढ़ती है जो मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए काफी लाभकारी होता है। संरक्षित खेती के उपयोग से मिट्टी, जल, उर्जा के साधन आदि का समुचित उपयोग होता है जिससे उत्पादन लागत में कमी और खेती करना अधिक लाभप्रद होता है।

6.1.2 भारत में जैविक उत्पाद

हमारे देश में अनाज, फल, सब्जियां, मसाले और जड़ी–बूटियां जैविक विधि द्वारा उत्पादित किए जा रहे हैं। कपास, गन्ना, धान, मक्का, ज्वार, अरहर, मूंग, उड़द, सोयाबीन, मूंगफली, गेहूं, चना, मटर, मैथी, प्याज, आलू, टमाटर, आम, केला, अन्नानास, पपीता, संतरा, मिर्च, हल्दी, हरी चाय, सफेद व काली मिर्च, लॉंग, अजवाईन, जायफल, सफेद मूसली सहित कई औषधीय फसलों की खेती भी जैविक विधि से की जा रही है। परन्तु परंपरागत खेती की तुलना में इस खेती का क्षेत्रफल अभी बहुत ही कम है।

6.1.3 जैविक खेती के मुख्य घटक

(क) प्राथमिक स्रोत

• कार्बनिक खादेंμ गोबर की खाद, कम्पोस्ट, मुर्गी की खाद (बिस्टा), गोमूत्र, सींग से तैयार खाद आदि

• वानस्पतिक अवशिष्टμ खलियाँ, पुआल, भूसा, घरेलु अवशिष्ट व जैव उर्वरकμ राइजोबियम, एजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले सूक्ष्म जीवाणु, (पी.एस.एम.), माइकोराइजा आदि

• जानवरों के अवशिष्टμ हड्डी का चूरा, मछली की खाद, वर्मी कम्पोस्ट (केंचुए की खाद)

• कीड़ों एवं रोगों का जैविक नियंत्रणμ ट्राइकोग्रामा, एन.पी.वी., ट्राइकोडर्मा, फेरोमोन, नीम उत्पाद आदि

(ख) पूरक/द्वितीयक स्रोत

• चीनी मिल की खाद (प्रेशमड)

• सीवर की खाद (डाइजेस्टेड स्लज)

• कार्पेट अवशिष्ट

(ग) सस्य तकनीक

• फसल चक्र

• एग्रोनेट का प्रयोग

• ट्रैप क्राप (आकर्षक फसलें)

• गर्मी में गहरी जुताई

जैविक खेती के लिए प्रतिबन्धित एवं संस्तुति पोषक पदार्थ

• **संस्तुति**–रॉकफास्फेट, फेल्डस्पार, डोलोमाइट, रॉकपोटाश, मछली का चूरा, लकड़ी की राख, जिप्सम, चूना पत्थर वाला चाक, खुर एवं सींग की खाद

• **सीमित मात्रा में प्रयोग के लिए**–चमड़े की खाद, सुहागा (बोरेक्स), जिप्सम, पोटैशियम सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट

• **प्रतिबंधित**–खून, मांस, बुझा चूना, यूरिया एवं अन्य रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशी एवं फफूँदनाशी

•

जैविक खेती के लिए उपयुक्त कीटनाशी एवं फफूँदनाशी

• वानस्पतिक उत्पाद : नीम उत्पाद, पाइरिथ्रम, सबाडिल्ला, रोटीनोन

• खनिज आधारित कीटनाशी : सल्फर, चूना सल्फर

• जैव आधारित कीट एवं फफूँदनाशी : ट्राइकोग्रामा, ट्राइकोडर्मा, एन.पी.वी., बैसीलस थ्रुन्जेनेसिस आदि

6.1.4 जीवाणु खाद का प्रयोग

जैव उर्वरक उपयुक्त वाहक में तैयार किया गया सूक्ष्म जीवाणु होता है जो कि वायुमंडल के नेत्रजन का स्थिरीकरण करके या अघुलनशील जटिल फास्फोरस को घुलनशील बनाकर या फिर वृद्धि नियामक, विटामिन और अन्य वृद्धि कारकों को उत्पन्न करके फसल की उत्पादकता को बढ़ा देता है। सब्जियों में एजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरकों के प्रयोग से सब्जियों की उपज एवं गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ नेत्रजन एवं स्फुरीय उर्वरकों की भी बचत की जा सकती है।

• **बीज उपचार द्वाराः** जैविक खाद की 200 ग्राम मात्रा 10–12 कि.ग्रा. बीज शोधन के लिए पर्याप्त होती है। 200 ग्राम जीवाणु खाद को 400 मि.ली. पानी में मिलाकर अच्छी तरह बीज के साथ मिलाते हैं।

बीज को छाया में सुखाकर बीज की बुआई कर दी जाती है। ध्यान रहे कि जीवाणु खाद की एक पतली परत भली–भांति प्रत्येक बीज के ऊपर सुनिश्चित हो जाए। मटर, भिण्डी, राजमा एवं कद्दू वर्गीय सब्जियों के बीज इस विधि से शोधित किए जाते हैं।

• **जड़ उपचार द्वारा :** टमाटर, मिर्च, प्याज, फूलगोभी, पत्तागोभी आदि की पौध इस विधि द्वारा शोधित की जाती हैं। इस विधि में एक कि.ग्रा. कल्चर को लगभग 5–10 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। इस प्रकार तैयार घोल एक एकड़ की पौध के शोधन के लिए पर्याप्त होता है। तैयार किए गए घोल में पौधों की जड़ को कम से कम आधा घण्टा तक डुबोने के बाद पौध का रोपण किया जाता है।

• **भूमि उपचार द्वारा :** भूमि उपचार के लिए 2–5 कि.ग्रा. जीवाणु खाद को 40–60 कि.ग्रा. बारीक भुरभुरी मिट्टी या कम्पोस्ट के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। यह मिश्रण एक एकड़ में छिड़कने (प्रयोग करने) के लिए पर्याप्त होता है। जीवाणु खाद को बीज की बुआई या पौध की रोपाई के 24 घंटे पूर्व से लेकर बीज की बुआई या पौध की रोपाई करते समय तक प्रयोग किया जा सकता है।

6.1.5 जैविक पदार्थों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन

कृषक गण अभी तक रसायनिक उर्वरकों को नेत्रजन, स्फूर एवं पोटाश के स्रोत के रूप में प्रयोग करते रहे हैं, लेकिन जैविक खाद इन सभी तत्वों के अलावे सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी स्रोत है। अतः सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक पदार्थों द्वारा भी की जा सकती है जो कि वैकल्पिक विधि है। इनमें प्रमुख हैं :

1. जैविक खादों द्वारा : जैविक खादों में सूक्ष्म पोषक तत्व कम मात्रा में मौजूद रहते हैं परन्तु उनमें उपस्थित कार्बनिक अम्ल मिट्टी में उपस्थित उन तत्वों को घुलाकर उपलब्ध बना देता है। इसके अलावा जैविक खाद मिट्टी की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में भी सुधार लाते हैं। अच्छी तरह सड़ी हुई जैविक खाद ज्यादा लाभदायक होती है। इनमें गोबर खाद, कम्पोस्ट, सिवेज–स्लज, मुर्गी खाद, खल्ली, प्रेसमड प्रमुख है।

2. फसल अवशेष एवं हरी खाद द्वारा : लगातार फसल–चक्र में खाद एवं फसल के अवशेष का उपयोग करने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी दूर हो जाती है। इसी तरह हरी खाद के लगातार प्रयोग से खासकर मूंग का अवशेष एवं जैविक खाद द्वारा भी इनका प्रबन्धन हो जाता है एवं मिट्टी के स्वास्थ्य में भी सुधार होता है। फसल अवशेष के व्यवहार से पहले एक–दो वर्षों तक उपज पर प्रभाव पड़ता है परन्तु उसके बाद फसल उपज में काफी वृद्धि होती है एवं मिट्टी में पोषक तत्वों का स्तर भी बढ़ जाता है।

6.1.6 जैविक खाद बनाने की विधियाँ

1. कम्पोस्ट खाद : इसे बनाने के लिये निम्नलिखित विधियाँ हैं :

(क) गड्ढा विधि : इस विधि के द्वारा खाद बनाने के लिए उचित जगह का चुनाव आवश्यक है। जगह उँचाई पर स्थित हो जहाँ वर्षा का पानी ना ठहरे। गड्ढे की लम्बाई 3–5 मीटर, चौड़ाई 2 मीटर तथा गहराई 1 मीटर होनी चाहिए। इस गड्ढे में फसलों के अवशेष, खरपतवार, खेत खलिहान व रसोई के बचे अवशेष सतह दर सतह जमाते हुए इसके साथ 4–5 कि.ग्रा. मिट्टी में पशु–मूत्र मिले अवशेष मिलाये जाते हैं या 4–5 कि.ग्रा. टीका जो 15 दिन पुराने कम्पोस्ट के गड्ढे से लिया गया हो उसका घोल बनाकर उसे पहले डाली गई अवशेषों में मिलाया जाता है। इसी प्रकार सतह दर सतह भरने के बाद जब जमीन से आधा मीटर ऊँचाई तक आ जाय तब उसको चिकनी मिट्टी व गोबर मिला कर 7–10 से.मी. लेप से ढ़क दिया जाता है। लगभग तीन से चार महीने में कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाता है।

(ख) नादेप विधि : यह गड्ढा विधि का ही परिवर्तित रूप है। इस विधि में आयताकार छिद्रों वाला ईटों का एक टैंक बनाया जाता है जिसकी लम्बाई 3 मी., चौड़ाई 2 मी. तथा गहराई 1 मी. के लगभग होनी चाहिए। इसकी जमीनी सतह पर अच्छी किस्म की गोबर भर देनी चाहिए जिससे पानी का रिसाव न हो। इस टैंक में फसलों के अवशेषों, खरपतवार, तथा अन्य वस्तुओं को गोबर की पर्त के साथ–साथ मिट्टी की पर्त को एक के उपर एक बिछा कर भर दिया जाता है। हर सतह पर टीका का प्रयोग करना जरूरी है। गड्ढा उपर तक भरने के बाद उस पर

चिकनी मिट्टी व गोबर मिश्रण से लेप लगाकर बन्द कर दिया जाता है। इस विधि से 100–120 दिन के अन्दर कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाती है।

2. बायोगैस स्लरी

बायोगैस प्लान्ट से दो उत्पाद–बायोगैस (मीथेन+कार्बन डाईऑक्साईड गैस) एवं स्लरी मिलते हैं। सौर–उर्जा कार्बनिक पदार्थ के रूप में पेड़ पौधों में संरक्षित रहती है। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में सड़ने पर मीथेन गैस बनती है। मीथेन गैस एक प्राकृतिक परिस्कृत ईंधन है जिसे जलाने पर पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता। बैक्टीरिया की क्रिया से स्लरी में पोषक तत्वों कि मात्रा कम्पोस्ट से अधिक हो जाती है। यह माना जाता है की 13–14 टन कृषि अवशेष जैसे धान–गेहूँ इत्यादि का भूसा, गन्ने का पत्ता या सिठ्ठी, केला के खम्भे, खरपतवार–जलकुम्भी, पारथेनियम (गाजर घास), मिरचईया, भांग को बायोगैस प्लान्ट में प्रयोग कर 2400 घनमीटर गैस और 25–28 टन जैविक खाद मिल सकती है। कृषि अवशेष एवं खरपतवार के इस्तेमाल से स्लरी की गुणवत्ता भी बदलती है। 2400 घनमीटर गैस में उपस्थित उर्जा 1500 ली. कैरोसिन उर्जा के बराबर होती है। कम्पोस्ट बनाने पर यह उर्जा नष्ट हो जाती है साथ ही खाद भी निम्न कोटि का मिलता है। कृषि अवशेष अथवा खरपतवार एवं गोबर 1:1 के अनुपात में बायोगैस प्लान्ट में इस्तेमाल किया जा सकता है।

3. वर्मी कम्पोस्ट

केंचुए द्वारा तैयार कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट कहलाता है। केंचुए फसलों के अवशेष, घास–फूस, गोबर, बची हुई साग–सब्जियों, फल–फूल आदि खाकर उसे वर्मी कम्पोस्ट में परिवर्तित करते हैं। औसतन एक केंचुआ एक ग्राम वजन का होता है और 24 घंटे में एक ग्राम बीट निकालता है, एक वर्ग मीटर में बनी क्यारी में लगभग एक हजार केंचुए डालने पर प्रति दिन एक कि.ग्रा. वर्मी कम्पोस्ट बनता है। इस प्रकार 80–90 दिनों के भीतर एक वर्ग मीटर का क्षेत्र कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाता है। यह तकनीकी कार्बनिक खाद, जन्तु प्रोटीन, कार्बनिक पदार्थों के संरक्षण, उर्जा स्रोत की आपूर्ति, पर्यावरण प्रदूषण रोकने में सहायक, दुर्गन्ध से बचाव तथा संबंधित लोगों को रोजगार उपलब्ध कराती है।

वर्मी कम्पोस्ट के लिए उपयुक्त केंचुए की प्रजातियाँ

विश्व में केंचुए 10 कुलों (फेमिली), 240 वंश (जेनेरा) तथा लगभग 4200 प्रजातियों (स्पेसीज) में वर्गीकृत किये गये हैं। अध्ययन व आवश्यकता की दृष्टि से इन्हें कई आधार पर वर्गीकृत किया गया है। वातावरणीय घटकों (उपलब्ध नमी, ताप व पोषक स्रोत आदि) के अनुसार उनकी अनुकुलन ब्यूह रचना के आधार पर केंचुओं को तीन श्रेणियों में बांटा गया है : (1) इपीजीइक (2) एण्डोजीइक (3) एनेसिक

इपीजीइक : ये केंचुए मैन्योर वर्म्स अथवा कम्पोस्ट वर्म्स के नाम से जाने जाते हैं। ये कूड़ा–करकट के ढेर अथवा भूमि की सतह पर सड़ते हुए किसी भी जैविक पदार्थ की परत तक सीमित रहते हैं। अपनी पोषकीय आवश्यकता विविध प्रकार के सड़ते हुए कार्बनिक यौगिक पर भक्षण कर पूरी करते हैं। इनका जीवन काल छोटा तथा प्रजनन दर अधिक होता है।

एण्डोजीइक : ये केंचुए भूमि की निचली खनिज युक्त परतों में रहते हैं। इनका भक्षण मिट्टी पर अधिक तथा कार्बनिक पदार्थ पर कम होता है।

एनेसिक : ये केंचुए बहुत जटिल व गहरी सुरंग बनाकर रहते हैं एवं अपने भोजन के रूप में पत्तों को सतह से लेकर बिल में घसीटकर ले जाते हैं। एण्डोजीइक एवं एनेसिक की बढ़वार क्षमता धीमी होती है। इपीजीइक केंचुए अपने भक्षण, प्रजनन एवं आवासीय विशेषताओं के कारण वर्मी कम्पोस्ट के लिए उपयोगी हैं। एण्डोजीइक एवं एनेसिक केंचुए भूमि में नीचे रहने के कारण मृदा गुणों को सीधा प्रभावित करते हैं। वे भूमि में वायु संचार, कार्बनिक पदार्थों का वितरण, मिश्रण एवं मृदा पुंज निर्माण की प्रक्रियाओं को बढ़ाते हैं तथा सामान्यतः फील्ड वर्म के नाम से जाने जाते हैं। सभी सतही केंचुए (इपीजीइक) हर प्रकार के आर्गेनिक वेस्ट तथा हर परिस्थिति में वर्मी कम्पोटिंग के लिए उपयोगी नहीं हैं। उपयुक्त प्रजाति का उपयोग करने पर विघटन की अवधि को बहुत हद तक घटाया जा सकता है। महत्वपूर्ण उपयोगी सतही केंचुओं की प्रजतियाँ निम्न हैं :

(1) आइसिनिया फेटिडा

(2) यूड्रीलस यूजेनी

(3) पैरियोनिक्स एक्सवेटस

आइसिनिया फेटिडा : इसे मल के ढ़ेर (सिवेज डम्प), स्लज, गंदे तालाब तथा नालियों में पाया जाना संभव है। अतः इसे सिवेज वर्म भी कहा जाता है। शरीर का उपरी भाग गहरे रंग का होता है तथा निचला भाग हल्का पीला होता है। वयस्क केंचुए का भार 1.5 ग्राम तक हो सकता है। प्रजनशील केंचुए में क्लाइटेलम का फैलाव शरीर खंड 24, 25 अथवा 26 से 32 तक हो सकता है। विभिन्न प्रकार के सड़ने एवं गलने वाला कार्बनिक पदार्थों पर यह जाति जीवित रह सकती है, फलतः इसका कल्चर आसान है।

यूड्रिलस यूजेनी : यह रात्रि में रेंगने वाले केंचुए (नाइट क्राउलर) के नाम से जानी जाती है। शरीर का रंग भूरा लाल अथवा गहरा बैंगनी तथा मांस के रंग का होता है। वयस्क केंचुआ 2–3.5 ग्राम तक का हो सकता है। वयस्क केंचुएँ में क्लाइटेलम का फैलाव 13 अथवा 14 शरीर खंडों से 18 वें शरीर खंड तक हो सकता है।

पैरियोनिक्स एक्सवेटस : इसका प्राकृतिक निवास गौशालाओं के पास कम्पोस्ट ढेर है। अधिक कार्बनिक पदार्थ वाली भूमि में भी ये गुच्छों में पाए जाते हैं। यह झुंड में रहने का आदी है। शरीर का उपरी भाग गहरा लाल से गहरा बैंगनी तथा नीचे का भाग हल्के पीले रंग का हो सकता है। वयस्क केंचुआ सामान्यतः औसतन 1.5 से 3.0 ग्राम तक हो सकता है। वयस्क केंचुआ में क्लाइटेलम का फैलाव शरीर के 13 से कम या 13 से 18 वें शरीर खंड तक हो सकता है। प्राकृतिक दशा में केंचुआ जमीन में उपस्थित कार्बनिक स्रोतों से कम्पोस्ट बनाता है जो मात्रा उसकी अपनी आवश्यकता होती है परन्तु यदि इसे व्यावसायिक दृष्टि से अपनाया जाये तो निम्नलिखित साधनों को उपयोग में लाया जा सकता है।

1. कृषि अवशेष : धान का पुआल, गेहूँ का भूसा, चने का भूसा, सरसों का भूसा, फसलों के अवशेष जैसे डंठल, पत्तियाँ, दाने तथा फलियों के छिलके, खरपतवार, फल–सब्जियों के छिलके इत्यादि।

2. वानिकी अवशेषः सड़ी–गली लकड़ी, पत्तियाँ, छोटे पौधे के डंठल, लकड़ी के छिलके इत्यादि।

3. पशुओं के अवशेषः जानवरों के मल–मूत्र, बायो–गैस स्लरी।

4. घरों के अवशेषः रसोई घर के अवशेष, घरेलु साफ सफाई से उत्पन्न शुष्क एवं अशुष्क कूड़ा कचरा।

5. शहरी अपविष्टः घरों तथा होटलों का किचन वेस्ट, सब्जी मण्डी एवं मंदिरों का अपविष्ट, डाइजेस्टेड स्लज इत्यादि।

6. कृषि उद्योगः कृषि पर आधारित खाद्य प्रसंस्करण इकाई यथा वनस्पति तेल, चीनी मिल डिस्टलरिज, बीज प्रसंस्करण इकाई, औषधीय एवं सुगंधित तेल प्रसंस्करण इकाई, नारियल उद्योग इत्यादि से प्राप्त कार्बनिक अपविष्ट।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि

(क) पूर्व प्रसंस्करण : कचड़ों के बायोडिग्रेडेबल पदार्थों को नॉन–बायोडिग्रेडेबल पदार्थों से अलग कर लेना चाहिए। यथा संभव कचड़े के ढ़ेर को कुचल कर, पीटकर या चोप कटर से कटवा कर बारीक कर लेना चाहिए। यह क्रिया सतही क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए की जाती है जो सूक्ष्म जैविक एवं केंचुओं की क्रियाशीलता को बढ़ावा देती है।

(ख) अवशेषों का समिश्रण एवं आंशिक विघटन कराना : तैयार कम्पोस्ट की गुणवत्ता उपयोग किए आधारीय कार्बनिक अपविष्टों पर निर्भर करती है। अतः सभी प्रकार के कार्बनिक अपविष्टों की उपलब्धता के आधार पर केंचुए का भोजन तैयार करते समय, वांछित वर्मी कम्पोस्ट प्राप्त करने के लिए अपविष्टों का समुचित तरीके से मिश्रण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि कार्बनिक अपविष्ट कम नेत्रजन वाला है (लकड़ी युक्त) तो इसमें हरी पत्तियाँ एवं गोबर मिलाना चाहिए। सामान्यतया गोबर एवं कार्बनिक अपविष्ट 1 : 2 अथवा गोबर, मिट्टी एवं कार्बनिक अपविष्ट 1 : 2 : 3 के अनुपात में मिलाकर ढेर किया जाता है, तत्पश्चात् मिश्रण में पानी छिड़काव कर मिलाया जाता है ताकि मिश्रण का नमी स्तर 60 प्रतिषत (भार/भार) के लगभग रहे। यह मिश्रण 15–20 दिनों पश्चात ही केंचुए के भोजन के लिए उपयोग करना चाहिए। चूँकि केंचुए ताजे कार्बनिक अपविष्टों की भक्षण क्षमता

नहीं रखते हैं इसलिए अंशतः विघटित ढेरों में ही केचुओं को छोड़ना चाहिए। इसके अन्य लाभ भी हैं। विघटन की प्रारंभिक प्रक्रिया में मिश्रण का तापक्रम 60^0–70^0 सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है, जो केंचुए के लिए हानिकारक है क्योंकि अधिकांश केंचुए की प्रजातियों के लिए उपयुक्त तापमान साधारणतः 20^0–35^0 सेन्टीग्रेड माना गया है।

(ग) वर्मी कम्पोस्टिंग की प्रक्रियाः वर्मी कम्पोस्ट, टैंक विधि, क्यारी विधि, ढेर विधि इत्यादि कई विधियों से बनायी जा सकती है परन्तु व्यवसायिक दृष्टिकोण से एक छतदार/छायादार पक्के फर्श पर वांछित ढेर लगाकर बनायी जा सकती है। सामान्यतः उपर वर्णित तरीके द्वारा तैयार कार्बनिक अपविष्टों के मिश्रण को शंकुकार ढेरों/बेड जिसकी उँचाई सामान्यता 2 फीट तथा अधिकतम 3 फीट की होती है, लगायी जाती है तथा केंचुओं की उपयुक्त प्रजातियाँ (आइसिनिया फेटिडा, यूड्रीलस यूजेनी एवं पेरियोनिक्स एक्सवेटस) 1–2 किलोग्राम प्रति टन सामग्री के हिसाब से ढेरों की सतह पर एवं ढेर के चारों तरफ नाली बनाकर छोड़ी जाती हैं। पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए गर्मियों में दो बार एवं जाड़े में एक बार जल का छिड़काव करना चाहिए। वर्मी कम्पोस्टिंग बेड को पूरी तरह से भींगे जूट के बोरे से ढ़कने पर नमी संरक्षण के साथ–साथ केंचुए की सक्रियता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। सतही भक्षी होने के कारण केंचुए उपर से नीचे खाना प्रारंभ करते हैं और धीरे–धीरे नीचे जाते हैं, इस तरह उपर का पदार्थ पहले वर्मी कम्पोस्ट में बदलता है। वर्मी कम्पोस्ट बनने पर यह दुर्गन्ध–रहित बारीक, दानेदार तथा गहरा लाल रंग लिये हुए चाय की पत्ती की तरह पड़ा प्रतीत होता है। तैयार वर्मी कम्पोस्ट को लकड़ी के पट्टे की सहायता से नीचे गिराकर जमा किया जाता है। इस तरह 70–75 दिनों में केंचुआ खाद तैयार हो जाती है।

वर्मी कम्पोस्ट की छनाई एवं पैकिंग

इकट्ठा की गयी वर्मी कम्पोस्ट 2 मि.मी. की चलनी द्वारा छानकर 20–25 प्रतिषत नमी पर आवश्यकतानुसार विभिन्न इकाई के बैग उदाहरणार्थ, 1 कि.ग्रा., 2 कि.ग्रा., 5 कि.ग्रा., 25 कि.ग्रा. एवं 50 कि.ग्रा. भार में बाजार में विपणन हेतु भेजा जा सकता है।

वर्मी कम्पोस्ट के गुण

विभिन्न कार्बनिक अपविष्टों को भोजन के स्रोत के रूप में उपयोगोपरान्त प्राप्त वर्मी कम्पोस्ट में तत्वों का स्तर निम्नवत पाया गया है।

पोषक तत्व की मात्रा

ऑर्गेनिक कार्बन	12.2–25.0 प्रतिषत
कुल नेत्रजन	1.2–2.1 प्रतिषत
उपलब्ध स्फूर	0.68–1.48 प्रतिषत
उपलब्ध पोटाश	0.36–0.72 प्रतिषत
सूक्ष्म पोषक तत्व (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	
लोहा	2500–3000
जस्ता	100–150
तांबा	50–100
मैंगनीज	250–300

केंचुआ एवं वर्मी कम्पोस्ट का मृदा पर प्रभाव

जलधारण क्षमताः केंचुओं द्वारा छोड़ा गया लसलसा पदार्थ व कोकून मृदा में जलधारण क्षमता को बढ़ाता है जो नमी को लंबे समय तक बनाये रखता है।

मृदा वातायन : केंचुए की विभिन्न प्रजातियां जमीन में सुराख (छेद) बनाती हैं जिससे मृदा हल्की एवं भुरभुरी बनती है। फलस्वरूप मृदा वातायन, जलधारण तथा जलनिकास क्षमता में बढ़ोतरी तथा जड़ों की वृद्धि में सहायक बनती है। इसके अलावा चूहे, केंचुए की तलाश में जमीन में गहराई तक बिल बनाते हैं जो प्राकृतिक जलनिकास में सहायक होता है।

मृदा अपरदन से बचाव : केंचुओं द्वारा छोड़ा गया लसलसा पदार्थ पॉलीसेकराइड, एक गोंद होता है जो कि मृदा के जल स्थिर कण बनाकर अपरदन से बचाता है।

वाष्पण से बचाव : केंचुओं के उत्तकों से एक पेरिट्रोफिक झिल्ली निकलती है। यह वर्मी कास्ट को पारदर्शी कवच प्रदान करती है जो वाष्पन दर को कम करता है।

ह्यूमिफिकेशन को बढ़ावा : केंचुओं के अत्यधिक घूमने–फिरने एवं विभिन्न कार्बनिक पदार्थों को पचाने और उन्हें मल के रूप में बाहर निकालने से एक पॉलीसेकराइड निकलता है जो एंजाइम्स, जटिल और जैविक अणुओं को परिवर्तित कर देता है एवं ह्यूमिफिकेशन को बढ़ाने में सहायक होता है।

सूक्ष्मजैविक क्रियाशीलता : केंचुओं के चारों तरफ का वातावरण सूक्ष्मजीवों के लिए बहुत ही अच्छा होता है क्योंकि केंचुए जो पदार्थ अपने शरीर से निकालते हैं, उस पर सूक्ष्म जीवों की वृद्धि शुरू हो जाती है और बाहर निकला पदार्थ एमाइलेज, लाइपेज, सेलुलेज, प्रोटीयेज, काइटीनेज आदि एंजाइम्स धारण किये रहता है। यह कार्बनिक पदार्थों से भिन्न होता है। इसके अलावा वर्मी कम्पोस्ट त्वरित नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु, फास्फोरस घोलक, सेलूलोज अपघटक माइकोराइजा, फफूंद आदि का एक अच्छा माध्यम भी हैं।

मृदा प्रदूषण पर प्रभाव : केंचुए जमीन से कार्बनिक पदार्थों को खाते समय कई जहरीले रासायनिक तत्वों के साथ–साथ कुछ फफूंद एवं नीमेटोड को भी ग्रहण कर लेते हैं जो उसके उतकों में जमा हो जाता है। केंचुओं का शरीर खुद ही एक एंटीबायोटिक होता है, अतः केंचुए मृदा प्रदूषण रोकने में भी सहायक है।

केंचुआ पालन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. केंचुओं का उपयोग : मृदा गुणवत्ता बढ़ाने एवं फसलोत्पादन बढ़ाने में इनका उपयोग लाभदायक सिद्ध हो चुका है। वर्मी कम्पोस्ट पालन तकनीकी का प्रयोग शहरी कचरे के प्रशोधन, पशुपालन से निकलने वाले वाहित घोल के पुनः उपयोग, स्लज एवं सीवेज के प्रबंधन तथा औद्योगिक इकाइयों जैसेμ कागज कारखाना, खाद्य सामग्री प्रसंस्करण इकाई, कपड़ा कारखाना आदि से वाहित किये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों के विघटन में किया जा सकता है। एक तरह से केंचुए जैव–प्रौद्योगिकी के लिए स्थाई साधन है।

2. अनुपयोगी जल का पुनः प्रयोग : देश में लगभग 80 प्रतिषत बिना उपचारित सीवेज जल नदियों, तालाबों एवं जल स्रोतों में बहाया जाता है। शहरी सीवेज को बिना उपचारित किये ही सुखाकर स्लज तैयार करते हैं, जो मृदा प्रदूषण की समस्या पैदा करता है। देश में कुल 360 गन्ना (चीनी) मिल और 214 डिस्टिलरी है जो भारी मात्रा में प्रदूषित जल बहा रही है। इसके अलावा छोटे दुग्ध कारखाने, पशुवध गृह, रंग एवं चमड़ा शोधन कारखानों, कागज कारखानों आदि के दूषित पानी का उपचार महंगी तकनीकी के कारण नहीं कर पाते हैं और अशोधित अनुपयोगी जल बहता रहता है जिसे नियंत्रित दशा में प्रथम एवं द्वितीय चरण के उपचार के बाद केंचुआ खाद बनाने में प्रयोग किया जाये तो इन जलों एवं उनमें उपस्थित पोषक तत्वों का उपयोग हो जाता है।

अन्य जैविक खाद में पोषक तत्वों की मात्रा

अन्य जैविक खादों में खल्ली, हरी खाद का प्रयोग अधिक होता है। इसके अतिरिक्त मानव मल–मूत्र, शहर के कुड़ा–कचरा से बना कम्पोस्ट,स्लज (अपवंक) इत्यादि का भी प्रयोग कर सकते हैं। इनमें पोषक तत्व की मात्रा अलग अलग होती है।

जैविक खाद के	नाईट्रोजन	पोटाष (प्रतिषत)	स्फूर (प्रतिषत)

नाम	(प्रतिषत)		
खल्ली	2.0–7.0	0.8–2.0	1.0–1.9
हरी खाद	0.6–0.75	0.12–0.15	0.5–0.6
मानव मल	5.5	4.0	2.0
शहरी कम्पोस्ट	1.0–2.0	1.0	1.5
स्लज	1.5–3.5	0.75–4.0	0.3–0.6

स्लज में सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ–साथ निकिल, पारा, लेड इत्यादि की मात्रा अधिक होती है। अतः इसका प्रयोग सोच समझकर करना चाहिए।

6.1.7 जैविक खाद की उपयोगिता

कम्पोस्ट या गोबर की खाद 10 टन प्रति एकड़ या 30 से 40 टन प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग की जाती है। खल्लियों को भी प्रायः सभी भूमि एवं फसलों में प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा एक एकड़ में 1 से 5 क्विंटल की दर से होती हैं। जैविक खाद का प्रयोग करने पर इसका प्रभाव भूमि के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुणों पर पड़ता है। भौतिक प्रभाव के अन्तर्गत भूमि की संरचना में सुधार, जल धारण क्षमता, उष्मा शोषण क्षमता और पारगम्यता का बढ़ना तथा जल निकासी में सुधार होना प्रमुख है। क्षारीय मिट्टी या उसर भूमि में जैविक खाद खासकर हरी खाद लगातार प्रयोग करने पर मिट्टी की भौतिक एवं रासायनिक दशा सुधरती है। इसके प्रयोग से जमीन में पहले से उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है। इन जीवाणुओं द्वारा नाइट्रीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि होती है। भूमि में धारण से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ भविष्य के लिये पोषक तत्व संरक्षित भी रहते हैं। खल्लियों का प्रयोग करने पर सूत्रकृमि परजीवी से फसल को बचाया जा सकता है। नीम की खल्ली यूरिया में मिलाकर प्रयोग करने पर नाइट्रीकरण प्रक्रिया धीमी होती है। जैविक खाद का प्रयोग प्रत्येक फसल में करना जरूरी है। अगर खाद कम उपलब्ध हो तो चक्र तकनीक से खाद देना चाहिये। चक्र क्रम विधि या चक्र तकनीक द्वारा खेत के आधे या एक तिहाई हिस्से में क्रमवार प्रतिवर्ष उपलब्ध खाद की निश्चित मात्रा के आधार पर नियमित प्रबंध किया जाता है।

जैविक खाद की उपयोगिता बढ़ाने के लिये निम्न बिंदुओं पर ध्यान रखना आवश्यक है :

- पूरी तरह से तैयार खाद ही खेत में प्रयोग करें।
- बोआई के लगभग 15 दिन पहले जैविक खाद खेत में डालें तथा जल्द से जल्द हल चलाकर मिट्टी में मिला दें।
- जैविक खाद के उपयोग के लिये सिंचाई प्रबन्ध होना जरूरी नहीं है, किन्तु हरी खाद का प्रयोग सिंचित क्षेत्रो में ही किया जाता है।
- प्रयोग के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि रासायनिक उर्वरक के साथ जैविक खाद का प्रयोग करने से फसल को जरूरी पोषक तत्व हमेशा मिलते हैं और मिट्टी पर रासायनिक खाद का हानिकारक प्रभाव कम होता है।
- जैविक खाद का प्रयोग हर फसल में करना लाभदायक होता है।

6.1.8 जैविक खाद्य पदार्थों का श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण

जैविक खाद्य का श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्बनिक खाद्य आन्दोलन प्रतिष्ठान (आई. एफ ओ. ए. एम), आइरिस कार्बनिक उत्पादक एवं किसान संगठन, संयुक्त राज्य अमेरिका का कृषि विभाग (यू.एस.डी. ए.) आदि के मापदण्डों के अनुसार फसलोत्पादन की तकनीक अपनाई जाती है। भारत में खाद्य के प्रमाणीकरण (डेमेटर सर्टीफिकेट) के लिए मापदंड एपेडा, नई दिल्ली के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि मंत्राालय भारत सरकार द्वारा मान्य एक्रेडिटेशन एजेन्सीयाँ :

- एपेडा व कॉफी बोर्ड
- स्पाइस बोर्ड व टी बोर्ड
- नारियल विकास बोर्ड व कोकोवा एवं काजू बोर्ड जैविक खेती के प्रमाणीकरण के लिए परिवर्तन काल की अधिकतम सीमा एक वर्षीय फसलों के लिए तीन साल व वहुवर्षीय फसलों के लिए चार साल तक रखी गयी है।

जैविक खेती का प्रमाणीकृत उत्पाद श्रेणी :

1. एकल प्रमाणित जैविक सामग्री से बने उत्पाद के लिए लेबल पर ''जैविक कृषि का उत्पाद'' लिखा जाता है।

2. जहाँ कम से कम 95 प्रतिशत तक प्रमाणित जैविक सामग्री से उत्पाद बनाया जाता है उस पर ''प्रमाणित जैविक'' का लेबल लगाया जाता है।

3. जहाँ 95 प्रतिशत से कम तथा 70 प्रतिशत से अधिक प्रमाणित जैविक सामग्री के उपयोग से उत्पाद बनाते हैं उन पर ''जैविक सामग्री से बना हुआ'' लेबल लगाते हैं।

4. जहाँ 70 प्रतिशत से कम प्रमाणित जैविक सामग्री का बना उत्पाद होता है वहाँ लेबल पर जैविक नहीं लिखा जाता है किन्तु जो भी जैविक सामग्री का उपयोग होता है उनका विवरण दिया जा सकता है।

6.1.9 जैविक खेती से लाभ

- उत्पादन की माँग में वृद्धि व उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार
- उत्पादन में वृद्धि
- रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी दवाओं की मात्रा में कटौती
- मृदा की दशा में सुधार व मृदा जल प्रदूषण से बचाव
- मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा
- वातावरण को टिकाउ एवं सुरम्य बनाने में सहायक

जैविक खेती आशंका से आशा तक

आशंका 1. : जैविक खेती में उत्पादन कम होता है और लागत अधिक हो सकती है।

आशा : जब रासायनिक खेती से जैविक खेती में भूमि को परिवर्तित किया जाता है तो इसमें 3–4 वर्ष का समय लगता है क्योंकि जैविक खाद धीरे–धीरे असर करती है। शुरु के 1–2 वर्ष उपज 70–80 प्रतिशत तक हो सकती है। उसके बाद जैविक खेती में रासायनिक खेती की अपेक्षा उपज अधिक ही होगी और वह भी लम्बे समय तक। साथ ही जैविक खेती की लागत रासायनिक खेती से कम होती है। जैविक खेती के उत्पादों का बाजार में 10–20 प्रतिशत अधिक मूल्य मिलता है। अतः लागत कम व मूल्य अधिक होने से लाभ अधिक होता है।

आशंका 2. : जैविक खेती के प्रमाणीकरण में 3–4 वर्ष लगते हैं।

आशा : जैविक खेती के प्रमाणीकरण के लिए परिवर्तन काल की अधिकतम सीमा एक वर्षीय फसलों के लिए चार साल तक रखी गयी है। यह दो कारकों पर निर्भर करता है।

(अ) जैविक खेती शुरु करने से पहले उस खेत में कितना रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का प्रयोग किया गया है। यदि कम किया गया है तो परिवर्तन काल 1–2 वर्ष का भी हो सकता है।

(ब) यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि खेत से रसायनों के अवशेष निकालने और जैविक खेत बनाने का प्रबन्ध कितना अच्छा किया गया है।

परिवर्तन काल का सदुपयोग

(अ) परिवर्तन काल के पहले दो वर्ष उत्पाद की पैकिंग पर लिख दिया जाता है कि यह उत्पाद परिवर्तन काल में पैदा किया गया है। बाजार में सभी तरह के उपभोक्ता होते हैं और कई उपभोक्ता रासायनिक खेत की बजाय परिवर्तन काल के खेत से पैदा किये फसल या उत्पाद को ज्यादा पसंद करते हैं।

(ब) परिवर्तन काल के प्रचार के लिए स्थानीय बाजार से लेकर निर्यातक तक यह संदेश अच्छी तरह पहुँचा देना चाहिए कि अगले दो वर्ष में इस खेत से 100 प्रतिशत जैविक उत्पाद बनने लगेगा। जैविक खेती की मेहनत व प्रमाणीकरण का सही लाभ लेने के लिए प्रचार करना सबसे आवश्यक है। लेकिन प्रचार में धन ज्यादा लगाने की बजाय व्यक्तिगत संपर्क और सभी उपभोक्ता खरीददारों को व्यक्तिगत पत्र लिखना ज्यादा असरदार हो सकता है।

आशंका 3. : बाजार में जैविक खेती के उत्पाद को उपभोक्ता पसन्द करेगा या नहीं ?

आशा : आज हर जागरुक व्यक्ति जानने लगा है कि रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक के प्रयोग से पैदा हुआ उत्पाद स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आज अक्सर लोग यह कहते हुए मिलते हैं कि उर्वरक से पैदा किये अनाज, फल, सब्जी में स्वाद की कमी हो गई है। ऐसे समय में आज हर जागरुक उपभोक्ता यह चाहता है कि वह ऐसे खाद्य का प्रयोग करे जो उर्वरक–कीटनाशक के अवशेष से मुक्त हो अर्थात जैविक खेती से उत्पादित हो।

आशंका 4 : रासायनिक उर्वरकों पर सब्सिडी व खाद्यान्न फसलों के समर्थन मूल्य की तरह हीं क्या कुछ योजनायें जैविक खेती को सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए सरकार द्वारा शुरु की गयी है ?

आशा : सरकार की कोशिश, जैविक खेती को प्रोत्साहन देने हेतु दो दिशाओं से हो रही है–

1. जैविक खेती की तकनीकी का प्रचार, प्रदर्शन व अनुदान।

2. जैविक उत्पादों के विक्रय व बाजार व्यवस्था में सुधार करना और भारतीय उत्पादों के लिए बाजार ढूढ़ना।

आशंका 5 : क्या बिना प्रमाणीकरण के भी जैविक खेती के उत्पादों का अच्छा मूल्य मिल सकता है।

आशा : अपने देश के एक अरब से अधिक उपभोक्ताओं को बिना प्रमाणीकरण के निम्न उपायों द्वारा जैविक उत्पादों के प्रति विश्वास पैदा किया जा सकता है –

(अ) विक्रेताओं और उपभोक्ताओं को उत्पादन की प्रक्रिया दिखाकर।

(ब) सबसे पहले उन्हें उपभोक्ता बनाकर जिनका आप पर विश्वास हो ताकि वे दूसरों को विश्वास दिलाने में सहायक हों।

(स) सहकारी संघ बनाकर जिससे उस संघ के सभी किसान जैविक खेती करें और प्रचार किया जाये कि इस संघ के सभी उत्पाद जैविक विधि से तैयार किये जाते हैं।

आशंका 6 : क्या जैविक खेती के घटक यथा खाद, कीट नियंत्रक आदि को ग्राम स्तर पर बनाकर विक्रय किया जा सकता है ?

आशा : जैविक खेती के घटकों को ग्राम स्तर पर बनाकर सफलतापूर्वक विक्रय किया जा सकता है। इससे न केवल सहकर्मी व पड़ोसी से प्रेम बढ़ेगी वरन् कई लोगों को गॉव में ही रोजगार मिल सकेगा और ग्रामीणों का शहर की ओर पलायन रुक सकेगा।

आशंका 7. : जैविक खेती से उत्पादित किन वस्तुओं की मांग बाजार में अधिक है ?

आशा : वैसे तो जितनी भी खाद्यान्न वस्तुऐं जैविक खेती से उत्पादित होती है उन सभी की माँग बाजार में रहती है। इसमें भी फल और सब्जियों की माँग ज्यादा रहती है क्योंकि उनमें रसायनों के अवशेष ज्यादा होते हैं। रासायनिक खेती में तो आज छिड़काव कर किसान दूसरे दिन सब्जी को मण्डी ले आता है, क्योंकि यदि छिड़काव के 7 से 10 दिन बाद सब्जी तोड़ने के निर्देश का पालन करें तो सब्जी पक जायेगी और बाजार में भाव कम मिलेंगे। रासायनिक खेती में जहर की मात्रा कीट–रोग नियंत्रण तक ही सीमित नहीं रहती है। आजकल तो गोभी को सफेद करने और भिण्डी को हरा करने के लिए उन पर रसायनों का छिड़काव किया जाता है या फलों को रसायनों के घोल में डुबोया जाता है। इन्हीं कारणों से आज ज्यादातर जागरुक उपभोक्ता फल और सब्जियों को जैविक खेती से

उत्पादित ही खरीदना पसंद करते हैं। कई जैविक उत्पादों की विदेशों में काफी माँग है यानी निर्यात काफी मात्रा में हो रहा है और आगे भी सम्भावनायें हैं। जिनमें चावल (मुख्यतः बासमती), दाल (सोयाबीन, मसुर), तिलहन (तिल, मूँगफली), गन्ने के उत्पाद (गुड़ और शक्कर), फल (आम, अन्नास, लीची, केला), औषधीय एवं सुगंधीय पौधा, दुग्ध उत्पाद, मधु आदि मुख्य हैं।

6.2 समेकित कृषि प्रणाली

मिट्टी का स्वास्थ्य एवं उसकी उर्वराशक्ति अच्छी उपज का आधार है। सधन खेती एवं उन्नतषील प्रभेद लेने के साथ साथ रासायनिक खादों एवं कीटनाशी दवाओं के अंधाधुंध प्रयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य एवं उसकी उर्वराशक्ति दोनों को नुकसान हुआ है। दीर्घकाल तक अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए यह जरुरी है कि खेत की मिट्टी का भरपूर ख्याल रखा जाय फसल उत्पादन में उर्वरक का महत्वपूर्ण स्थान हैं। उर्वरकों के द्वारा पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति करते है। पौधों के उचित विकास हेतु सोलह पोषक तत्वों की अनिवार्य हैं। अतएव, लक्षित उपज लेने के लिए यह आवष्यक है कि उचित समय पर पोषक तत्वों का समुचित प्रयोग किया जाए। उर्वरक बहुत ही मंहगे हो गये है, अतएव, इनका उचित प्रबंधन जरूरी है। समय–समय पर मिट्टी की जांच की जाये तथा जांच के अनुसार ही फसल के लिए जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की मात्रा निर्धारित की जाए। रासायनिक उर्वरको को जैविक खाद एवं जीवाणु खाद के साथ मिलाकर प्रयोग करने से उर्वरकों का उपयोग फसलों के द्वारा अधिक–से–अधिक होती है एवं मिट्टी की उर्वराशक्ति में भी वृद्धि होती है। सशी संश्व ज्ञात श्रोतों से पौधों के लिए आवष्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति को समेकित कृषि प्रणाली कहते हैं।

6.2.1 समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के घटक

6.2.1.1 मिट्टी जाँच

बिना मिट्टी जाँच के रासायनिक खादों के उपयोग से उर्वरक, समय एवं श्रम की बर्बादी होती है। हो सकता है जो उर्वरक का व्यवहार किया जा रहा है उसकी जरूरत ही नहीं हो या कम मात्रा में जरूरत हो। किसी विशेष उर्वरक के जरूरत से ज्यादा मात्रा में व्यवहार करने से दूसरे तत्वों की उपलब्धता पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है, उपज में कमी हो सकती है और मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों में असंतुलन पैदा हो सकता है। उर्वरक की कीमत आये दिन बढ़ रही है। अतः उर्वरक का प्रयोग सही मात्रा में कर न्यूनतम खर्च से अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है।

6.2.1.2 जैविक खाद

जैविक खादों में गोबर खाद, कम्पोस्ट, सिवेज–स्लज, मुर्गी की खाद, खली की खाद, प्रेसमड आदि प्रमुख हैं। इनमें पोषक तत्व कम मात्रा में मौजूद रहते हैं, परन्तु कार्बनिक अम्ल मिट्टी में उपस्थित उनके विघटन के दौरान उत्पन्न तत्वों को घुलाकर उपलब्ध बना देते है। इसके अलावा जैविक खाद मिट्टी की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में भी सुधार लाते हैं। अच्छी तरह सड़ी हुई जैविक खाद ज्यादा लाभदायक होती है। कम्पोस्ट या गोबर की खाद 10 टन प्रति एकड़ या 25 टन प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग की जाती है। खल्लियों को भी प्रायः सभी भूमि एवं फसलों में प्रयोग किया जाता है। इसकी मात्रा एक एकड़ में 1 से 5 क्विंटल की होती है। खल्लियो के प्रयोग करने पर सूत्रकृमि परजीवी से फसल को बचाया जा सकता है। नीम की खल्ली यूरिया में मिलाकर प्रयोग करने पर नाइट्रीकरण प्रक्रिया धीमी होती है। इनके प्रयोग से जमीन में उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है। नाइट्रीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि होती है। भूमि में उपस्थित पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ भविष्य के लिये पोषक तत्व संरक्षित भी रहते हैं। जैविक खाद का प्रयोग प्रत्येक फसल में करना चाहिए । अगर खाद कम उपलब्ध हो तो चक्र तकनीक से अर्थात खेत के आधे या एक तिहाई हिस्से में क्रमवार प्रतिवर्ष उपलब्ध खाद की निश्चित मात्रा दी जाती है।

जैविक खाद की उपयोगिता बढ़ाने के लिये निम्न बिंदुओं पर धयान रखना आवश्यक है :

● पूरी तरह से तैयार खाद ही खेत में प्रयोग करें।

● बोआई के लगभग 15 दिन पहले जैविक खाद खेत में डालें तथा जल्द से जल्द हल चलाकर मिट्टी में मिला दें।

● जैविक खाद के उपयोग के लिये सिंचाई का प्रबन्ध होना जरूरी नहीं है, किन्तु हरी खाद का प्रयोग सिंचित क्षेत्र में ही किया जाता है।

● प्रयोग के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खादों का प्रयोग करने से फसल को जरूरी पोषक तत्व हमेशा मिलते हैं और मिट्टी पर रासायनिक खाद का हानिकारक प्रभाव कम होता है।

● जैविक खाद का प्रयोग हर फसल में करना लाभदायक होता है।

6.2.1.3 जीवाणु खाद

मिट्टी की उर्वराशक्ति को बनाये रखने तथा पौधों को नेत्रजन एवं अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धि एवं इसकी आपूर्ति बढ़ाने हेतु जीवाणु खादों का उपयोग लाभदायक है। जैव उर्वरक उपयुक्त वाहक में तैयार किया गया सूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो वायुमंडल के नेत्रजन का स्थिरीकरण करके या अघुलनशील जटिल स्फुर को घुलनशील बनाकर या फिर वृद्धि नियामक, विटामिन और अन्य वृद्धि कारकों को उत्पन्न करके फसल की उत्पादकता को बढ़ा देते है। एजोटोवैक्टर, एजोस्पाइरिलम, स्फुर को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरकों के प्रयोग से फसल की उपज एवं गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ नेत्रजन एवं स्फुरीय उर्वरकों की भी बचत की जा सकती है।

1. राइजोबियम कल्चर : दलहनी फसलों के लिए विभिन्न प्रकार के राइजोबियम कल्चर उपयोग में लाये जाते हैं। इनके प्रयोग से उपज में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि होती है तथा ये मिट्टी में प्रति हेक्टर 30 – 50 कि.ग्रा. नेत्रजन वातावरण से सीधे स्थिर कर सकते हैं।

2. एजोटोबैक्टर कल्चर : ये जीवाणु मिट्टी में स्वतंत्र रूप से मौजूद रहते हैं और वायुमंडल से नेत्रजन लेकर पौधों को ग्रहण कराते हैं। यदि मृदा में इनकी उपयुक्त उपस्थिति हो तो प्रति वर्ष प्रति हेक्टर 10–20 कि.ग्रा. तक नेत्रजन उपलब्ध कराते हैं। एजोटोबैक्टर का उपयोग मृदा या बीज शोधन के द्वारा करके उपज में 5–10 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। इसे गेहूँ, मक्का, गन्ना, बागवानी और चारा फसलों में प्रयोग कर सकते हैं।

3. नीलहरित शैवाल : धान की फसल में नीलहरित शैवाल का प्रयोग कर प्रति हेक्टर 20–25 कि.ग्रा. नेत्रजन की बचत की जा सकती है। धान की फसल में नेत्रजन स्थिरिकरण के लिए नील हरित शैवाल का उपयोग सबसे सस्ता एवं आसान है। धान की रोपनी के एक सप्ताह बाद नीलहरित शैवाल का सूखा कल्चर 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से स्थिर पानी में भुरक दें। इसे वर्षा होते रहने पर नहीं डालें। धान की फसल में 3–4 वर्षों तक लगातार नीलहरित शैवाल का प्रयोग करने पर इनकी बहुत अधिक संख्या मिट्टी में स्थापित हो जाती है और मिट्टी की उर्वराशक्ति कायम रहती है।

4. एजोस्पिरिलम : ये जीवाणु फसलों की जड़ों में रहते हैं। ये जीवाणु फसलों की जड़ों में प्रवेश करके वायुमंडल से नेत्रजन लेकर पौधों को ग्रहण कराते हैं। ये जीवाणु 10 से 40 कि.ग्रा. नेत्रजन प्रति हेक्टर पौधों को देते हैं। यह मक्का, मडुआ, ज्वार, बाजरा आदि में अधिक उपयोगी है।

5. स्फुर–घोलक जीवाणु : ये जीवाणु मृदा में जैविक अम्ल उत्पन्न कर अघुलनशील स्फुर को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करते हैं जिन्हें पौधा आसानी से ग्रहण करते है।

6. माइकोराइजा : माइकोराइजा पौधों की जड़ो पर पाये जानेवाले फफूँद हैं। बीज को बोते समय इसका व्यवहार करने से पौधों की जड़ों पर फफूँद की वृद्धि होती है। पौधों की जड़ों के बाहर फफूँद के बढ़वार से कुल प्रभावी रसग्राही क्षेत्र बढ़ जाता है। फफूँद पौधे की मूल अंचल में जैविक अम्ल उत्पन्न करते हैं जो मिट्टी में उपस्थित अघुलनशील स्फुर को घुलनशील बनाते हैं। मक्का, गेहूँ, सूरजमुखी, मूँगफली, चना, आलू, जौ, बाजरा आदि

फसलों में माइकोराइजा का टीका देने से कमजोर और स्फुर की कमी वाले मिट्टी में भी इन फसलों से ज्यादा उपज पायी जा सकती है।

6.2.1.4 फसल अवशेष

मृदा को स्वस्थ रखने के लिए फसल अवशेषों का पुनः चक्रण भूमि में सीधा मिलाकर, बिछावन के रूप में भूमि सतह पर प्रयोग कर अथवा वर्मी कम्पोस्ट बनाकर किया जा सकता है।

फसल अवशेषों के पुनः चक्रण के लाभ :

जीवांस की उपलब्धता में वृद्धि : फसल अवशेषो खेत में सड़ने से उत्पन्न जीवांस मिट्टी में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्वों कों पौधों के लिए सुलभ बनाने में मदद करता है।

पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि : फसल अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में उपस्थित होते हैं जो सूक्ष्म जीवाणुओं एवं केंचुएं की क्रियाशीलता से अपक्षय के उपरान्त पौधों के लिए उपलब्ध होते हैं।

मृदा भौतिक गुणों में सुधार : मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में जीवांस की मात्रा बढ़ने से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जल धारण क्षमता एवं मृदा वातन में वृद्धि होती है।

मृदा उर्वराशक्ति में सुधार : फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रसायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पी.एच. मान एवं पोषक तत्वों की धारण क्षमता में सुधार होता है।

फसल उत्पादकता में वृद्धि : फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर मृदा के विभिन्न गुणों के सम्वर्धन के फलस्वरूप फसलों की उत्पादकता में काफी वृद्धि होती है।

अतः, मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता की दृष्टि से फसल अवशेषों को जलाने के बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है। फसल अवशेषों से प्राप्त जीवांस भूमि में जाकर मृदा पर्यावरण में सुधार कर सूक्ष्मजीवी को क्रियाशीलता बढ़ाते हैं जिससे टिकाऊ कृषि के साथ–साथ उत्पादन में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।

6.2.1.5 हरी खाद

हरी खाद का प्रयोग भी मिट्टी के बिगड़ते स्वास्थ्य की रक्षा में काफी हद तक सहायक है। मुख्य फसल लेने से पहले खेतों में ढैंचा, उरद, मूंग या सनई लगाया जाना चाहिए। जब ये करीब डेढ़–दो फीट का हो जाए तब उसे खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर मिला देना चाहिए। कुछ दिनों के बाद ये सड़ जायेगा, तब इसमें मुख्य फसल लगाएं । जिस तरह कम्पोस्ट एवं गोबर की खाद मिट्टी के स्वास्थ्य की रक्षा करती है, उसी तरह हरी खाद भी मिट्टी स्वास्थ्य की रक्षा करती है। गर्मी में मूंग या उरद हरी खाद के रूप में व्यवहार किया जाता है। हरी खाद के व्यवहार से फसल को प्रति हेक्टर 30–35 किलोग्राम नेत्रजन मिलता है।

6.2.1.6 कुछ अनुशंसाएं

- 10 टन जैविक खाद के साथ धान एवं गेहूँ के अवशेष को व्यवहार करने के बाद धान एवं गेहूँ प्रत्येक में 50 प्रतिशत अनुशंसित उर्वरकों (60 कि.ग्रा. नेत्रजन 30 कि.ग्रा. स्फुर एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हे.) की बचत की जा सकती है। इसके साथ–साथ मिट्टी की उर्वराशक्ति भी बढ़ जाती है तथा यह सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को भी दूर करता हैं।

- रासायनिक उर्वरक को 10 टन प्रति हेक्टर जैविक खाद एवं नीलहरित शैवाल के साथ धान की फसल में उपयोग करने से अनुशंसित उर्वरक की मात्रा को एक चौथाई (30 कि.ग्रा. नेत्रजन 15 कि.ग्रा. स्फुर एवं 10 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हे.) एवं गेहूँ में उपयोग करने से अनुशंसित उर्वरक की मात्रा को 20 प्रतिशत (20 कि.ग्रा. नेत्रजन 12 कि.ग्रा.स्फुर एवं 8 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हे.) कम किया जा सकता है।

● स्फुर की बचत जैविक खाद के प्रयोग द्वारा की जा सकती है।10 टन बायोगैस स्लरी, कम्पोस्ट या जलकुम्भी कम्पोस्ट के प्रयोग से धान एवं गेहूँ में 30 किलोग्राम स्फुर प्रति हेक्टर की बचत की जा सकती है । जैविक खाद के साथ फॉस्फेट को घुलनशील बनाने वाले फास्फो–बैक्टीरिया जीवाणु के साथ व्यवहार करने से चूनायुक्त एवं अम्लीय मिट्टी में प्राप्त फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ती है ।

● जैविक खाद के साथ 10 टन केला के धड़ों एवं पत्तियों से बने कम्पोस्ट के व्यवहार से 40 किलोग्राम प्रति हे. पोटाश की बचत धान एवं गेहूँ की फसल में की जा सकती है।

● प्रयोग द्वारा विदित हुआ है कि 4–6 क्विंटल दाना प्रति हे. गरमा मूंग प्राप्त कर फसल अवशेष को मिट्टी में गाड़ने से अनुशंसित उर्वरक की एक चौथाई (30 कि.ग्रा. नेत्रजन 15 कि.ग्रा. स्फुर एवं 10 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हे.) बचत प्रत्येक धान एवं गेहूँ की फसल में की जा सकती है ।

6.3 पादप पोषक तत्वों का पुर्नचक्रन (Recycling of Plant Nutrient)

मिट्टी में सभी पोषक तत्व उपस्थित है हलाकि ये विभिन्न रुप मे पाये जाते हैं। साधारणतः पादप पोषक तत्वों का चक्रन विभिन्न माध्यम से होते हुये निम्न प्रकार से होता हैः

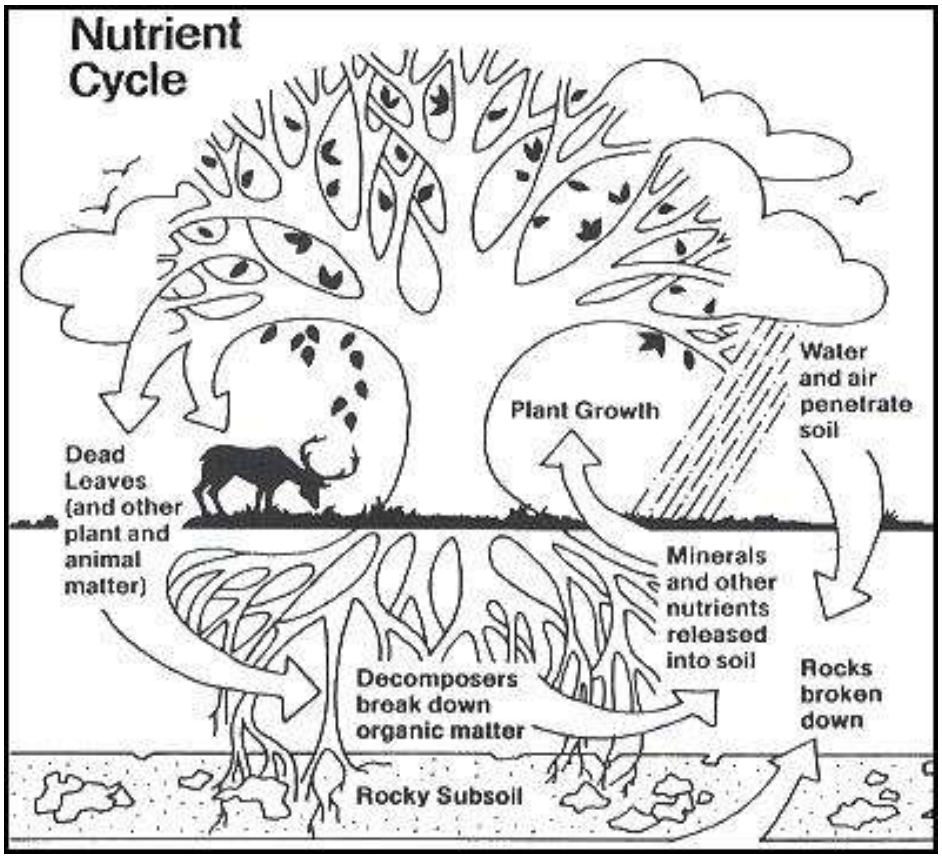

पौधों को पोषक तत्व मिट्टी से हीं मिलता है परन्तु लगातार उपज लेते रहने से मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों का दोहन होते रहता है फ्लतः मिट्टी का स्वास्थ्य दिनों दिन खराब होते जाता है। फसलों द्वारा निकाले गये पोषक तत्वों का कुछ हिस्सा मनुष्य द्वारा एवं कुछ हिस्सा जानवर द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं परन्तु उसका अधिकतर हिस्सा नष्ट हो जाता है। मिट्टी में पोषक तत्वों का अधिकतर हिस्सा अनुपलब्ध के रूप में रहता है जिसका कुछ भाग पौधों की जड़ों द्वारा उपलब्ध बनाकर उपयोग में लाये जाते हैं एवं मिट्टी का दोहन हो जाता है।

फसलों द्वारा मिट्टी से निकाले गये पोषक तत्वों का वह भाग जो उपयोग में नही लाये जाते एवं नष्ट हो जाते हैं उसे पुनः मिट्टी में वापस करने की क्रिया को पादप पोषक तत्वों का पुर्नचक्रन कहते हैं। फसलों द्वारा मिट्टी से निकाले गये पोषक तत्वों का कई तरीकों से पुनः मिट्टी में वापस किया जा सकता है जो नीचे वर्णन किया जा रहा है।

1. फसल अवशेष द्वाराः

2. फार्महाउस का बेकार पदार्थ (अवशेष)
3. गौषाला अवशेष (गोबर, मूत्र, बचा चारा, इत्यादि)
4. शहर एवं ग्रामीण क्षेत्रों के नालों का स्लज एवं स्लरी
5. उद्योगों का अवशेष (Bye products)
6. जैविक खाद
7. जीवाणु खाद
8. हरी खाद
9. आदमी के मल मूत्र का खाद
10. मरे हुये जानवर का खाद
11. वर्मी कम्पोस्ट, इत्यादि

यों तो पौधे जमीन से संतुलित मात्रा में पोषक तत्व लेते हैं परन्तु बदलते वातावरण में मिट्टी का दोहन होने एवं संतुलित उर्वरक का प्रयोग नहीं करने से मिट्टी का भी संतुलन बिगड़ गया है। अतः उत्पाद भी असंतुलित पोषक तत्वों वाला मिल रहा है जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर असर पड़ा है एवं वातावरण भी प्रदूषित हो रही है। फसल अवशेषों को यत्र तत्र बरबाद करने से वातावरण का प्रदूषण और बढ़ रहा है। इसका निदान शी पादप पोषक तत्वों का पुर्नचक्रन हीं है।

पादप पोषक तत्वों का पुर्नचक्रन के लाभ

इसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अनेकों लाभ हैं जिनमें कुछ निचे दिये गये हैं।

1. मृदा के स्वास्थ्य की रक्षा करता है
2. संतुलित पोषक तत्वों वाला उत्पाद उत्पादित करता है
3. यत्र तत्र गंदगी फैलाने से रोकता है

4. वातावरण के प्रदूषण को कम करता है

5. मनुष्य एवं जानवर के स्वास्थ्य की रक्षा करता है

6. आथिक स्थिति में सुधार लाता है

जैविक पदार्थ के कार्य एवं लाभ पहले बताये जा चुके हैं।

6.4 सटीक (Precision) खेती

सटीक खेती का अर्थ होता है कि सही संसाधन (Input) का प्रयोग सही मात्रा में, सही समय पर, सही तरीकों से आधुनिक तकनीक का उपयोग कर इस तरह किया जाय कि संभव अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके। अर्थात कमसे कम खर्च में अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने कि विधि को सटीक खेती कहते हैं।

देष की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं की जड़ में मूलतः गरीबी और भूखमरी मुख्य कारक है। प्रदेष और राष्ट्र के समक्ष बढ़ती आबादी को भरपेट अन्न उपलब्द्ध कराना आज की एक ज्वलंत समस्या है। शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के प्रभाव से कृषि योग्य भूमि का लगातार कमी होना, नैसर्गिक संसाधनों यथा मिट्टी एवं पानी का अदूरदर्षितापूर्ण दोहन, रासायनिक खादों का असंतुलित प्रयोग, उक्त मौलिक समस्या को और भी जटिल बनाता है।

हरित क्रांति : सत्तर के दषक में गेहूँ एवं धान के नाटे प्रभेदों एवं रासायनिक उर्वरकों के संयुक्त प्रयोग से हरित क्रांति संभव हुआ और कृषि उत्पादन में आषातीत उपलब्धि हासिल की गई। परन्तु, हरित क्रांति की उपलब्धि विभिन्न प्रदेषों में समरुप नहीं था।

मिट्टी की दषा : रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग न करना, सिंचित क्षेत्रों में आवष्यकता से अधिक सिंचाई एवं जुताई के फलस्वरुप मिट्टी की दषा बिगड़ती गई है फलतः उसके उपज क्षमता पर प्रतिकूल असर पड़ा। आज किसान स्वंय इस स्थिति का अनुभव कर रहे है। मिट्टी में एक के बाद क्रमषः दूसरे, तीसरे एवं अधिकांष पोषक तत्वों की कमी परिलक्षित हो रही है। आज यह भी अनुभव किया जा रहा है कि किसी फसल के निष्चित उत्पादन को प्राप्त करने के लिए साल दर साल अधिक से अधिक रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल करना पड़ता है। साथ ही उर्वरकों की बढ़ती कीमत के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो रही है। फलतः कृषि के प्रति उनका रुझान कम हो रहा है।

जलवायु एवं जैविक पदार्थ : बिहार प्रदेष का जलवायु सब–ट्रॉपिकल है। यहाँ औसत वार्षिक तापक्रम 28^0 सी एवं औसत वर्षा लगभग 1200 मि.मी. है। अधिक तापक्रम एवं नमी के प्रभाव से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ (जीवाषं) की मात्रा का ह्रास तेजी से होता जाता है। जीवाषं की मात्रा एवं मिट्टी की उत्पादकता में सीधा संबंध है। मिट्टी जीवाषं की मात्रा बढ़ने से उसकी उत्पादकता बढ़ती है। इस स्थिति में अधिक फसल उत्पादन के लिए मिट्टी में रासायनिक खादों की संतुलित मात्रा के अलावा जैविक उर्वरकों अथवा उपयुक्त कार्बनिक पदार्थों का समुचित मात्रा में प्रयोग अनिवार्य है।

वर्षाजल एवं प्रदूषण : वर्षाजल के प्रभाव से मिट्टी की सतह पर उपस्थित दानेदार संरचना टूटती है और मिट्टी के महीन कण पानी के साथ मिट्टी में उपस्थित रन्ध्रों को अवरुद्ध कर देते है।परिणामतः मिट्टी में जलरिसाव का दर कम हो जाता है और मिट्टी के उपर वर्षा जल का जमाव होता है। यह जल नीचे के खेतों से होते हुए नालों एवं नदियों में बह जाता है। इस प्रक्रिया में केवल जल ही नहीं अपितु मिट्टी के कण भी उसके साथ बहकर खेतों से निकल जाता है। इसप्रकार मिट्टी एवं पानी का क्षय होता है। जिससे भूजल एवं मिट्टी की उत्पादकता में कमी आती है। एक इंच मिट्टी के निर्माण, जो एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, में सैकड़ों साल लगते है।अतः मिट्टी एवं पानी को अमूल्य प्राकृतिक संसाधन कहा जाता है। वर्षा जल के साथ मिट्टी खेतों से निकलकर नदी नालों में गाद के रुप में जमा होती है जिससे जल का प्रदूषण बढ़ता है।

संरक्षित खेती : उपरोक्त समस्याओ से निजात पाने एवं मिट्टी की उत्पादकता बढ़ाने हेतु कृषि वैज्ञानिक नित नवीन प्रयोग में जुटे हैं। संरक्षित खेती की अवधारणा इसी का सार्थक परिणाम है। संरक्षित खेती का लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं सम्बर्धन करना तथा वातावरण के प्रदूषण को कम करना है। संरक्षित खेती की अवधारणा

मूलतः तीन सिद्धांतों यथा, कम अथवा नगण्य जुताई, फसल अवषेषों को खेतों मे रखना एवं उपयुक्त फसल चक्र पर आधारित है।

1. कम अथवा नगण्य जुताई : परम्परागत तरीके से जुताई के कारण मिट्टी की दषा बिगड़ती है। इस तरीके से मिट्टी के दाने टूट कर छोटे हो जाते है फलतः मिट्टी में जल–हवा का अनुपात बिगड़ता है जिसका फसलों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। साथ ही मिट्टी में जल–रिसाव कम हो पाता है। मिट्टी की अधिक जुताई के कारण इसमें हवा की मात्रा बढ़ती है और जीवांष का क्षय तेजी से होता है। कदवा करना भी परम्परागत जुताई का एक तरीका है जो विषेषकर धान की रोपाई के लिए किया जाता है। कदवा करने से मिट्टी की संरचना पूरी तरह नष्ट हो जाती है जिसका दुष्परिणाम धान फसल के उपरान्त होने वाले रबी फसल पर परिलक्षित होता है। वैज्ञानिक प्रयोगों में पाया गया है कि कदवा की गई खेत में रबी फसलों के उत्पादन में 15 से 30 प्रतिषत की कमी आती है। ऐसी परिस्थितिमें मिट्टी की कम या नगण्य जुताई कर फसल लगाना लाभकारी है। नगण्य जुताई में जीरो टीलेज यंत्र के माध्यम से एक पतली लकीर खोल कर बीज एवं उर्वरक खेत में डाले जाते हैं। इस विधि द्वारा बीज लगाने से पूर्व खेत की तैयारी का खर्च कम होता है। धान के बीज भी इस तरीकें से बिना कदवा किये खेतों में लगाये जा सकते हैं। खर–पतवार नियंत्रण के लिए उचित खर–पतवार नाषी दवाओं का प्रयोग अनिवार्य है। दोनों पद्वतियों (परम्परागत एवं कम/नगण्य जुताई) में धान के फसलोत्पादन में कोई अन्तर नहीं आता। अक्सर ये भ्रम होता है कि खेत की जुताई कम/नगण्य होने से मिट्टी की सतह कड़ी होती जायेगी। परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं होता क्योंकि इस विधि में मिट्टी में जरुरत से ज्यादा हवा की मात्रा नहीं होती अतः जैव पदार्थों का नाष कम होता है फलस्वरुप मिट्टी की संरचना सुदृढ़ होती है और मिट्टी का प्रपुंज धनत्व कम होता है जो पौधों की जड़ों के विकास के अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करता है।

2. फसल अवषेषों का खेतों में रखना : फसल अवषेषों का कम से कम एक तिहाई या सम्पूर्ण मात्रा खेतों में ही रख देते है। इसके कई लाभ है। फसल अवषेष मिट्टी को वर्षा जल की बूंदों के सीधे चोट से बचाता है जिससे मिट्टी की संरचना सुरक्षित रहती है और जल का रिसाव मिट्टी के अंदर भरपूर होता है अर्थात् जल एवं मिट्टी का क्षय कम होता है। यह मिट्टी के तापक्रम को फसलों के विकास के अनुरुप बनाता है। अर्थात जाड़े के दिनों में मिट्टी का तापमान सामान्य से अधिक होता है परन्तु गर्मी के मौसम में मिट्टी के तापमान को सामान्य से कम रखता है। साथही फसल अवषेषों की उपस्थिति में खर–पतवार की कम मात्रा खेतों में पनपती है और फसलों के लिए अधिक नमी और पोषक तत्व उपलब्ध हो पाता है। फसल अवषेषों की उपस्थिति में मिट्टी से वाष्पीकरण की क्रिया कम हो जाती है अतः मिट्टी में नमी ज्यादा दिना ेंतक बनी रहती है और सिंचाई जल की बचत होती है। मिट्टी में जीवाणुओं की सक्रियता के लिए समुचित मात्रा में कार्बनिक पदार्थ उपलब्ध होता है। फसल अवषेष कालान्तर में क्षय हो कर मिट्टी में मिल जाते हैं और मिट्टी की जीवांष मात्रा में वृद्धि होती है जिसका फसलोत्पादन पर अनुकूल प्रभाव मिलता है। इस प्रकार मिट्टी की जैविक, भौतिक एवं रासायनिक वातावरण बेहतर बनता है। मिट्टी के अनुकूल वातावरण के प्रभाव से इसके लाभकारी जीवों यथा, केचुओं की संख्या में काफी वृद्धि होती है और फसल अवषेषों का मिट्टी में मिलने की प्रक्रिया तेज होती है। उपरोक्त चर्चा का सार संक्षेप यह है कि फसल अवषेषों को खेत मे रखने से मिट्टी के तापमान को अनुकूल रखने, जल एवं मिट्टी का संरक्षण, नमी एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं साथ ही इनकी धारण क्षमता, जीवाषं की मात्रा एवं केंचुओ की संख्या में वृद्धि के कारण भूमि की उर्वरता एवं उत्पादनषीलता में उत्साहजनक बढ़ोतरी पाई जाती है। ऐसी भूमि टिकाऊ खेती के लिए समर्थ होती है। फसल अवषेषों का संरक्षित खेती में सफल प्रबंधन के कारण मिट्टी में नेत्रजन का क्षय कम होता है साथ ही मिट्टी से ग्रीन गैस, जो वातावरण के प्रदूषण एवं तापमान बढ़ाने में सहायक है, के उत्सर्जन की मात्रा में काफी गिरावट पाया जाता है। इस प्रकार जल एवं वायू का प्रदूषण कम होता है।

3. फसल चक्र : मिट्टी एवं जलवायु के अनुकूल फसल चक्र का चयन किया जाना चाहिए। विष्वविद्यालय के प्रयोग क्षेत्र में धान–गेहूँ एवं धान–रबी मक्का फसल चक्र में संरक्षित खेती का अच्छा परिणाम पाया गया है। फसल चक्र में दलहनी फसल का समावेष करना लाभप्रद हैं। दलहनी फसलों में वायुमण्डलीय नेत्रजन को स्थिर करने की क्षमता होती हैं जिससे मिट्टी में उपलब्ध नेत्रजन की मात्रा बढ़ती हैं और इसके उपरान्त लिये जाने वाले फसल को लाभ मिलता हैं। इस प्रकार नेत्रजनीय उर्वरक की बचत होती हैं। मिट्टी की भौतिक दषा पर भी दलहनी फसलों का अनुकूल असर पाया जाता हैं। इस संदर्भ में एकल फसल चक्र अवांछित हैं।

संरक्षित खेती के उपरोक्त तीन मूल सिद्धांतो के अलावा फसल चक्र में भूरी खाद के लिए धान के फसल में दो कतारों के बीच ढैंचा के बीज का रोपण किया जा सकता है। 30 दिनों के उपरान्त 2, 4–डी खर–पतवार नाषी दवा का 1 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से ढैंचा के पौधों पर व्यवहार कर उन्हें सूखा दिया जाता है। इस खाद का मिट्टी एवं धान के फसल पर अच्छा प्रभाव पाया गया है। सारांष : संरक्षित खेती आज के समय की मांग है। फसलोत्पादन एवं मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि के साथ मिट्टी और जल के संरक्षण तथा वातावरण के प्रदूषण को कम करने में इस तकनीक का महत्वपूर्ण योगदान है।

6.5 जल भरण प्रबन्धन (Watershed Management)

जल श्रण प्रबन्धन से तात्पर्य है कि उपलब्ध पानी के श्रोतों का इस प्रकार प्रबन्ध किया जाय कि कभी जल का अभाव नहीं हो। धरती पर लगभग 2.5 % ही षुद्ध जल है जो अधिकतर बर्फ के रूप में है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 2025 तक शरत में जल का काफी अभाव हो जायेगा।

6.5.1 जल श्रण प्रबन्धन के उदेष्य

जल श्रण प्रबन्धन के निम्न उदेष्य है :

1. जमीन पर उपलब्ध जल श्रण श्रोतों को सुरक्षित एवं संयोग कर रखना तथा उसमें सुधार लाना ताकि जल की आपुर्ति हमेषा बनी रहे
2. जल श्रण क्षेत्र में जल श्रोतों को सुरक्षित रखना ताकि इनमें जल की क्मी नहीं हो एवं इनकी सही उपयोगिजा बनी रहे
3. मिट्टी क्षरण को रोकना ताकि जल श्रण क्षेत्र में मिट्टी जमा नहीं हो एवं जल श्रण क्षेत्र में जल धारण क्षमता बरकरार रहे
4. भूमि की बिगड़ती हालत में सुधार
5. बाढ़ के दिनों में पानी का बहाव नीची ढ़लान में बनी रहे
6. बर्षा जल का जमीन में नीचे की ओर रिसाव बनी रहे
7. फसल की उत्पादकता में सुधार हो
8. बाढ़ जल प्रबन्धन द्वारा बाढ से होने वाली क्षती को कम करना
9. भूजलपुनर्भरण में बढ़ोत्तरी हो, एवं
10. षुद्ध जल मुहैया कराना ताकि हरियाली बनी रहे एवं प्रदुषित जल का सही प्रबंधन हो सके।

जल श्रण प्रबन्धन द्वारा मृदा एवं जल दोनों को संरक्षित रखा जा सकता है। इसके द्वारा वातावरण प्रदुषण पर शी लगाम लगाया जा सकता है।

6.5.2 जल श्रण प्रबन्धन के कारक (Control measure)

जल श्रण प्रबन्धन के निम्न लिखित कारक हैं :

1. षस्य क्रियायें
2. स्टीप (Strip) फसल प्रणाली
3. चारागाह प्रणाली
4. घास का फसल चक्र में समावेष
5. पेड़ एवं गहरी जड़ बाली पौधे लगाना

6. अभियंत्रण साधन

7. कन्टूर बॉध बनाना

8. कन्टूर नाला निर्माण

9. पथ निर्माण

10. मिट्टी का बॉध बनाकर

11. चेक डैम बनाना

12. तालाब बनाना

13. जल की धारा बदलकर

14. गली भूक्षरण का रोकथाम

15. पत्थर का डैम बनाना

16. स्थायी चारागाह बनाकर

17. जल की धारा के रुकावट हेतु पेड़ एवं गहरी जड़ बाली पौधे लगाना एवं बड़े बड़े पत्थर का उपयोग करना

18. सिल्ट टैंक बनाना

19. प्रदुषण रोकथाम के उपाय

कुछ जल श्रण प्रबन्धन नीचे के चित्रों में दर्षाये गये हैं :

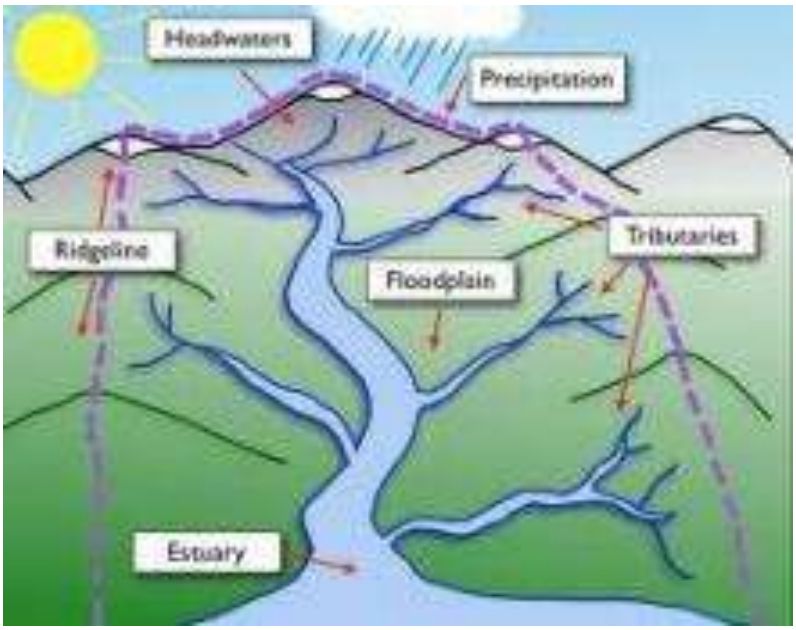

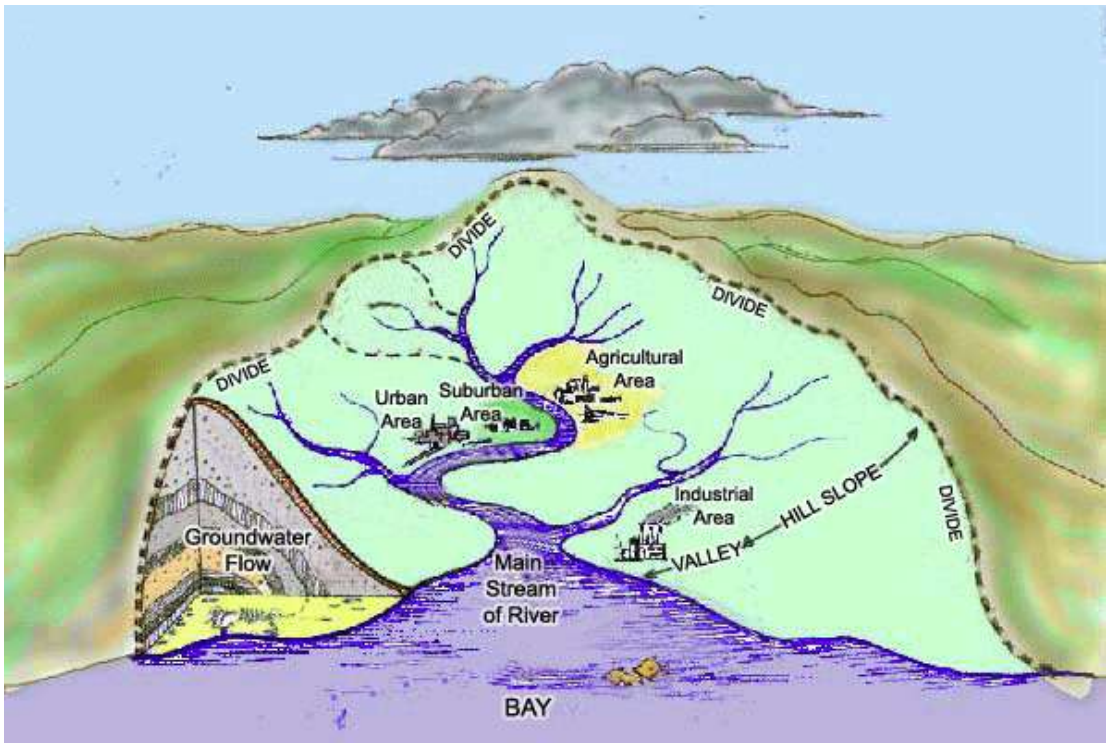

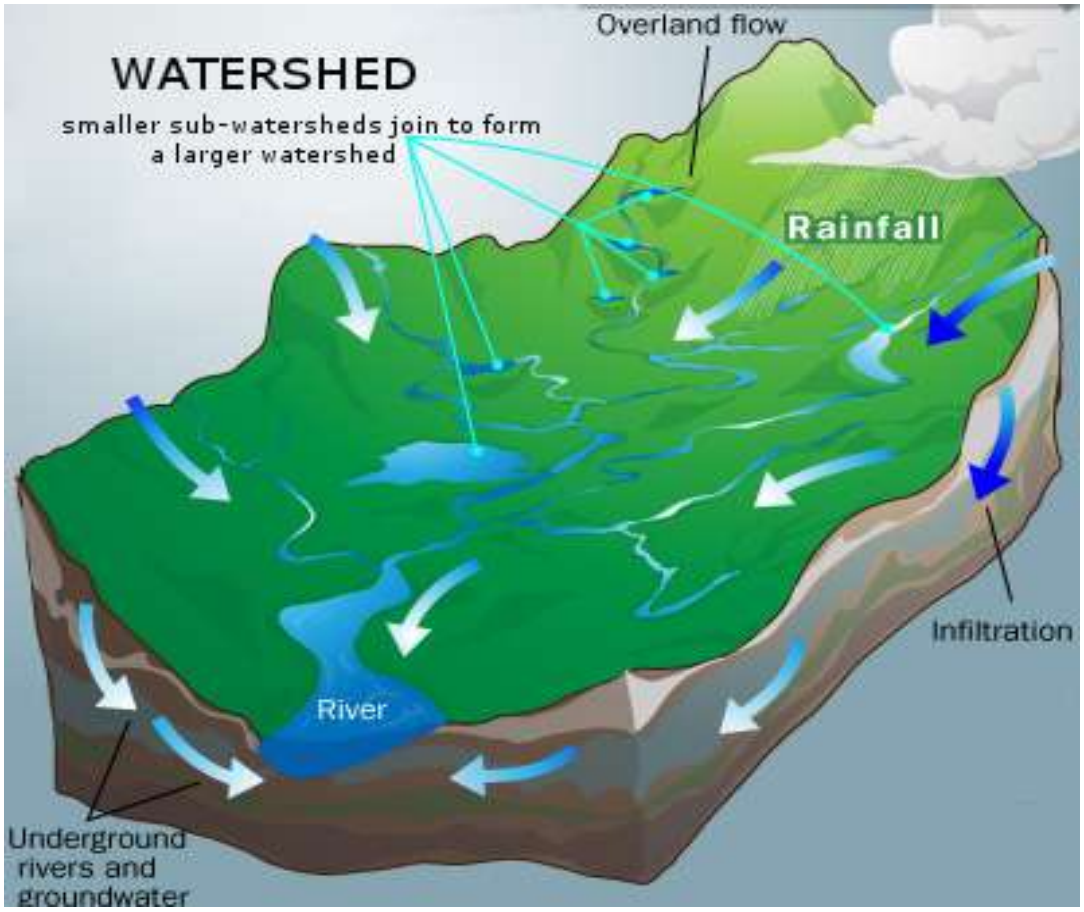

6.5.3 जल श्रण प्रबन्धन के लाभ

जल श्रण प्रबन्धन से पेड़ पौधे, जानवर एवं आदमी को अनेकों लाभ हैं जिसे निचे गिनाया जा रहा है :

1. सालों भर फसल प्रबन्धन द्वारा उत्पादन होते रहता है
2. जानवर एवं आदमी के लिये पीने का पानी की आपुर्ति करता है
3. मिट्टी में जल प्रदूषण में सुधार होता है
4. बर्षाजल का सही उपयोग होता है
5. बाढ़ से होने वाले क्षति को कम करना एवं सुखाड़ की स्थिति में सुधार होता है
6. भूजलपुनर्भरण में सुधार होता है
7. वन एवं पर्यावरण में सुधार होता है
8. जल निकास में सुधार होता है
9. रोजगार सृजन होता है

6.6 भूजलपुनर्भरण (Ground Water Recharge)

भूजलपुनर्भरण को गहरी जल निकास या गहरी जल रिसाव भी कह सकते हैं जिसके द्वारा सतही जल नीचे जाकर जमीनी जल (जल श्रोत, Aquifer) में मिल जाता है एवं जमीनी जलस्तर को बढ़ाता है। यह जल चक्रण द्वारा प्राकृतिक तरीकों से या कृतिम तरीकों से हो सकता है जिसमें बर्षा जल रिसाव द्वारा नीचे जल श्रोत में मिल जाता है।

6.6.1 भूजलपुनर्भरण का प्रदर्षण

भूजलपुनर्भरण के कुछ चित्र नीचे दिखाये जा रहे हैं।

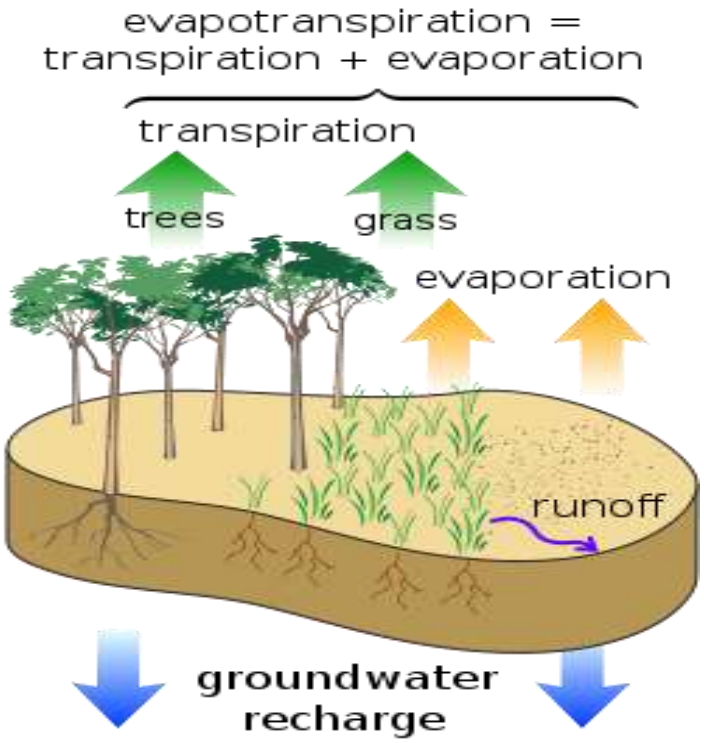

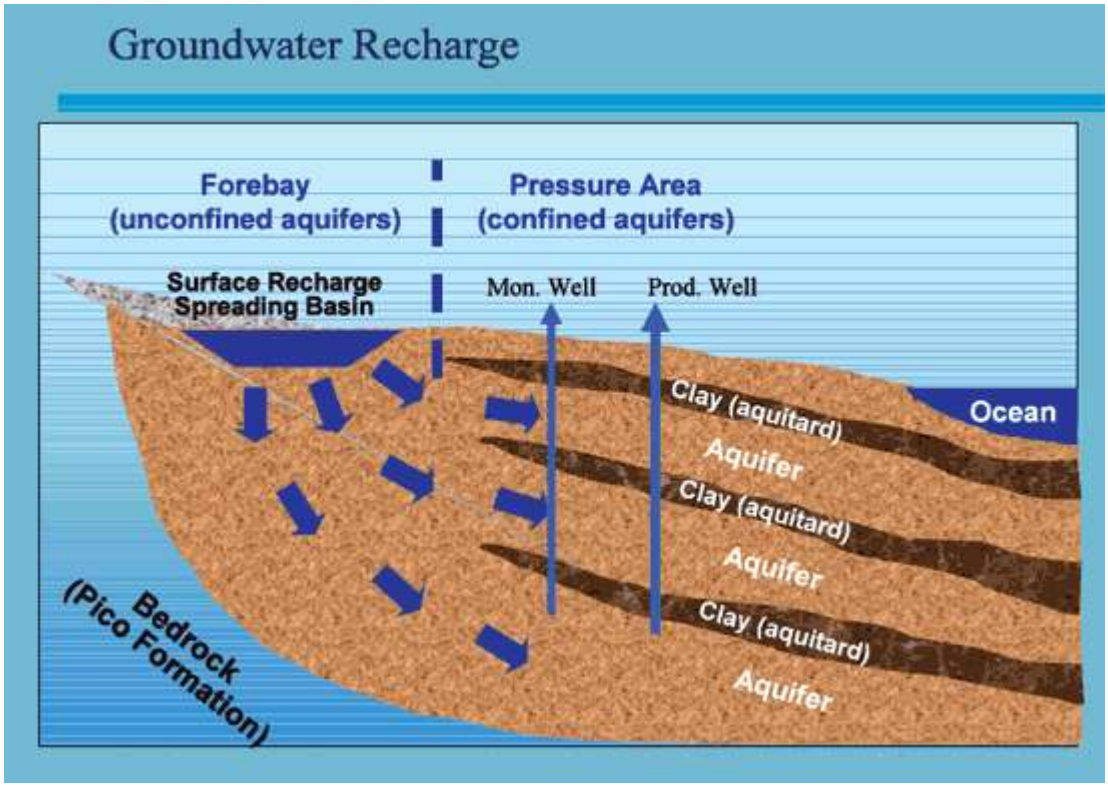
Groundwater Recharge
Forebay
(unconfined aquifers)
Pressure Area
(confined aquifers)
Surface Recharge
Spreading Basin
Mon. Well
Prod. Well
Clay (aquitard)
Aquifer
Clay (aquitard)
Aquifer
Clay (aquitard)
Aquifer
Ocean
Bedrock
(Pico Formation)

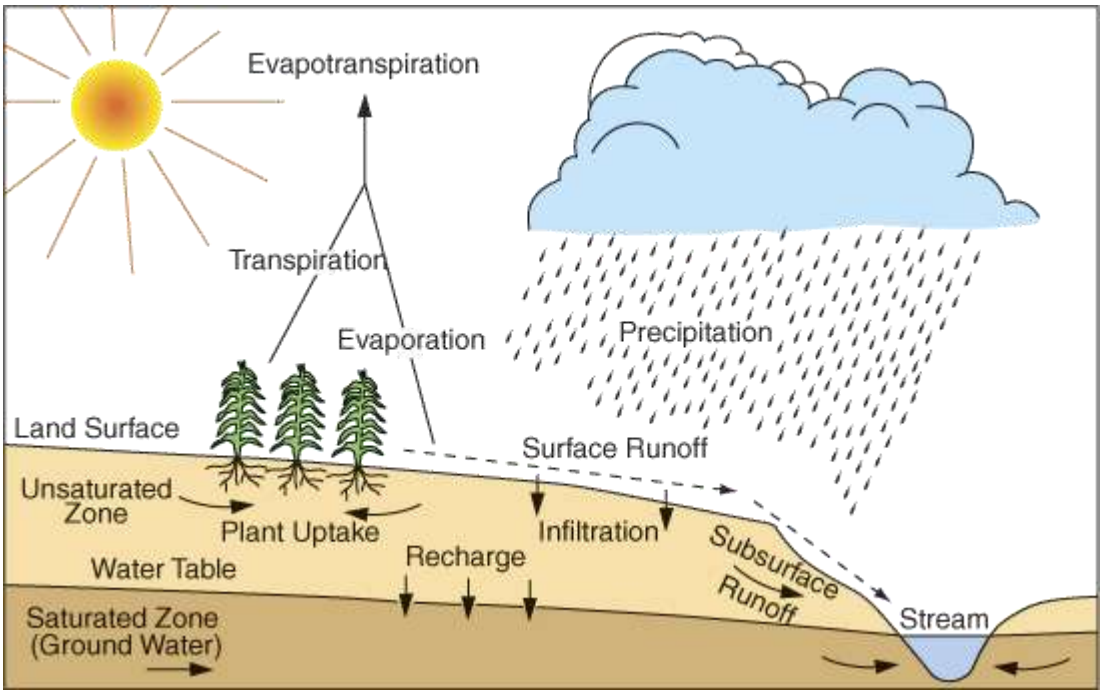
Evapotranspiration
Transpiration
Evaporation
Precipitation
Land Surface
Surface Runoff
Unsaturated
Zone
Plant Uptake
Infiltration
Subsurface
Runoff
Water Table
Recharge
Stream
Saturated Zone
(Ground Water)

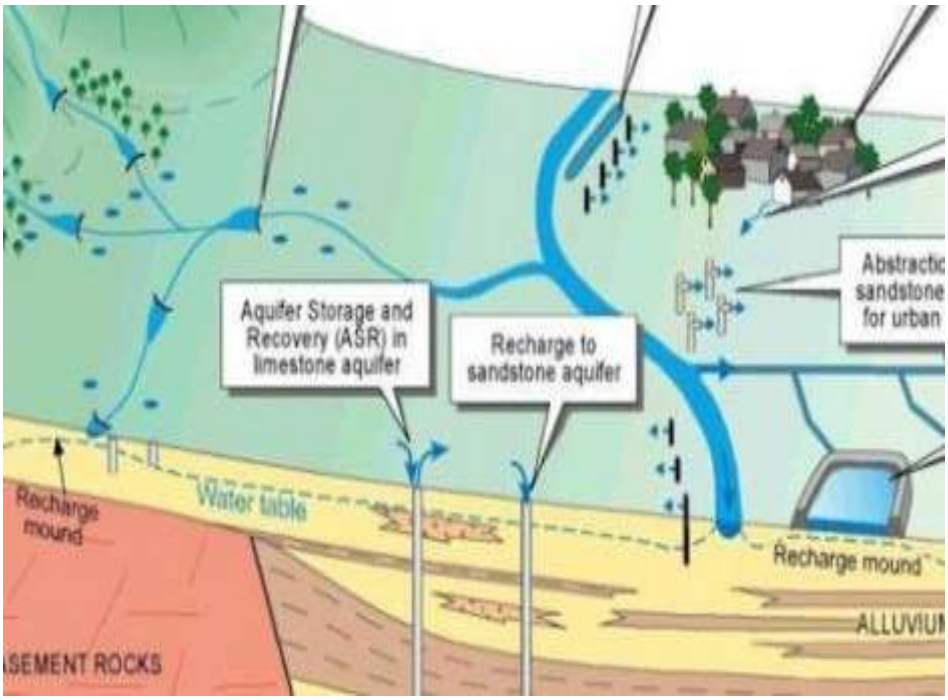

6.6.2 भूजलपुनर्भरण के दर की माप

भूजलपुनर्भरण के दर को मापना आसान नहीं है फिर भी यह तीन तरीकों से मापा जा सकता है :

1. भौतिक विधि
2. रासायनिक विधि
3. गणतीय विधि

भूजलपुनर्भरण का दर एवं मात्रा सभी जगह एक जैसा नहीं होता है। यह बर्षा जल की मात्रा, मिट्टी की बनावट, बालू पत्थर की उपस्थिति, जमीन की प्राकृतिक बनावट, जलवायु इत्यादि कई कारकों पर निर्भर करता है।

6.6.3 भूजलपुनर्भरण के लिये जल का श्रोत

भूजलपुनर्भरण के लिये अनेक श्रोतों से जल मिलता है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है :

1. बर्षा जल
2. सतहिये वहाव जल को जमाकर उपयोग में लाना
3. नदी, नालों एवं नहर द्वारा उपलब्ध जल
4. प्राकृतिक जल संपदा जैसे झील, झरना, इत्यादि जिसका जल उपलब्ध कराना
5. षहर एवं औद्योगिक क्षेत्रों द्वारा सीवेज जल का षुधिकरण के बाद का जल, इत्यादि।

6.6.4 कृत्रिम भूजलपुनर्भरण के तरीके

कम बर्षा जल वाले क्षेत्रों में भूजल की निकासी पर निर्भरता बढ़ गयी है जिसके चलते भूजल का स्तर लगातार नीचे गिरते जा रहा है जो एक समस्या बन गयी है। कहीं कहीं तो पेड़ पौधों को पानी मिलना तो दूर पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। षहरी करण एवं औद्योगिकी करण के चलते जल रिसाव के लिये खुले जमीन का क्षेत्रफल भी घटते जा रहा है एवं जल का खपत बढ़ते जा रहा है। इसके कारन भूजल के स्तर में

अतिरिक्त गिरावट आ रही है क्योंकि प्राकृतिक जल रिसाव से इसकी पुनर्भरण सम्भव नहीं है। अतः कृत्रिम तरीकों से भूजलपुनर्भरण की आवष्यकता बढ़ गयी है। कृत्रिम भूजलपुनर्भरण के कई तरीके हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैंः

1. नहरों का जाल बनाकर
2. जमाजल को फैलाने हेतु गढ्ढे एवं नालियों का जाल बनाकर
3. बहुतायत संख्या में तालाब बनाकर
4. जमीन की गहराई एवं समानान्तर (Vertical and Horizontal) पाइप बिछाकर
5. कुऍ की खुदाई कर
6. पंप द्वारा पुनर्भरण
7. कन्टूर बॉध बनाकर
8. कन्टूर नाला बनाकर
9. ढ़लाउॅ जमीन में सीढीनुमा बेंच बनाकर
10. भूक्षरण द्वारा बनी गली को बन्द करना
11. जलभरण प्रबंधन द्वारा
12. बर्षा जल का संचय करना

6.6.5 कृत्रिम भूजलपुनर्भरण के लाभ

जल की आवष्यकता जीवन के हर क्षेत्र में पड़ती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अनेक कारनों से जल की खपत बहुत बढ़ गयी है जिसके चलते भूजल के स्तर में काफी कमी आ गयी है एवं भूजल निकालना एक समस्या बन गयी है। यहांतक कि कुऍ एवं चापाकल का पानी सूख रहे हैं। अतः कृत्रिम भूजलपुनर्भरण का महत्व काफी बढ़ गया है। कृत्रिम भूजलपुनर्भरण के निम्नलिखित लाभ हैं :

1. कोई बड़े जल संग्रह संरचना की आवष्यकता नही पड़ती है वल्कि छोटे एवं कम खर्चीले संरचना से हीं काम चल जाता है।
2. कुऍ एवं चापाकल पर निर्भरता बढेगी।
3. सतहीय जल संग्रह की तुलना में जल की बर्बादी में कमी आती है।
4. जल की षुद्धता में सुधार आता है क्योंकि हानीकारक रासायन की सांद्रता में कमी आती है।
5. जल प्रदूषण में सुधार के चलते आदमी एवं जानवर के स्वाष्थ्य में सुधार आता है।
6. जल जमाव के खतरे से बचा जा सकता है ताकि फसलों को नुकसान नहीं हो।
7. स्थानिये लोगों के पलायन में कमी आती है।
8. भूजलपुनर्भरण के चलते भूजल स्तर में वृद्धि होती है जिसके चलते जल निकास में कम खर्च पड़ता है।
9. स्तरीय जल बहाव द्वारा अधिक जल का उपयोग भूजलपुनर्भरण में हो जाता है अतः जल की बचत होती है।

6.7 लक्षित उपज अवधारना (Targeted Yield Concept)

यों तो यह उर्वरक सिफारिष की पुरानी प्रणाली है जिसका प्रसार सही ढंग से नहीं हो पाया। इस प्रणाली में मिट्टी जॉच एवं विभिन्न फसलों की उत्पादन क्षमता तक उपज निर्धारित कर उर्वरकों की सिफारिष का आधार बनाया जाता है। मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक सिफारिष के निम्न कई तरीके हैं :

6.7.1 मृदा परीक्षण एवं उर्वरक सिफारिष

मृदा परीक्षण परिणाम प्राप्त होने के पश्चात् उनसे उर्वरकों की उपयोग की जाने वाली मात्रा का निर्धारण किया जाता है। विष्लेषण परिणाम और विभिन्न उत्पादन कारकों जैसे फसल प्रकार व किस्म, उत्पादन का स्तर, भूमि का प्रकार, उर्वरक का प्रकार एवं उपयोग विधि, फसल की कुल तत्व आवष्यकता इत्यादि के आधार पर गणनायें की जाती है। यह मृदा परीक्षण कार्यक्रम का अत्यंत कठिन तथा महत्वपूर्ण तकनीकी चरण होता है।

6.7.1.1 सिद्धांत एवं व्याख्या :

पौधों की कुल पोषक तत्व आवष्यकता की पूर्ति मृदा से उपलब्ध तत्व तथा उर्वरकों के रूप में दिये गये तत्व, इन दो श्रोंतों से होती है (दलहनी पौधों को छोड़कर)। इस तथ्य को निम्न समीकरण से प्रदर्षित किया जा सकता है।

पोषक तत्वों की कुल आवष्यकता = मृदा द्वारा प्रदत्त तत्व + उर्वरक द्वारा प्रदत्त तत्व

साधारणतया मृदा द्वारा प्रदत्त तत्वों की मात्रा काफी कम होती हैं अतः पोषक तत्वों की कुल आवष्यकता की पूर्ति के लिये उर्वरकों द्वारा तत्व प्रदान करने पड़ते है। इसके लिये आवष्यक उर्वरक तत्व मात्रा को प्रदर्षित करने के लिये उपरोक्त समीकरण को निम्न रूप में नियोजित किया जा सकता है।

उर्वरक तत्व की मात्रा = पोषक तत्व की कुल आवष्यकता − मृदा द्वारा प्रदत्त तत्व

अतः यदि पोषक तत्वों की कुल आवष्यकता ज्ञात हो तो मृदा परीक्षण द्वारा मृदा से उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा निर्धारित कर उर्वरक मात्रा की गणना की जा सकती है। उपरोक्त समीकरण की दो परिस्थितियां हो सकती है।

पोषक तत्वों की कुल आवष्यकता ≥ मृदा द्वारा प्रदत्त तत्व मात्रा

पोषक तत्वों की कुल आवष्यकता ≤ मृदा द्वारा प्रदत्त तत्व मात्रा

प्रथम परिस्थिति मृदा में तत्व की कमी को दर्षाती है तथा ऐसी स्थिति में पोषक तत्वों की कुल मात्रा एवं मृदा द्वारा प्रदत्त तत्वों की मात्रा का अन्तर उर्वरक सिफारिष है। यह परिस्थिति साधारणतया छोटे तथा मध्यम कृषकों के प्रक्षेत्रों में पायी जाती है। दूसरी परिस्थिति मृदा में पोषक तत्वों की अधिकता को प्रदर्षित करती है और इस स्थिति में उर्वरक की आवष्यकता नहीं होती है या उनकी मात्रा में कमी की जाती है। यह स्थिति साधारणतया उन्नत कृषकों के प्रक्षेत्र पर हो सकती है। इस तरह मृदा परीक्षण प्रथम स्थिति में तत्वों के उचित संतुलन द्वारा अधिक उत्पादन तथा द्वितीय स्थिति में उत्पादन में कमी किये बिना तत्वों की बचत करने का आधार प्रदान करता है।

6.7.1.2 उर्वरक सिफारिष की विभिन्न विधियाँ

मृदा परीक्षण द्वारा उपलब्ध तत्वों की मात्रा की निर्धारित करने के पश्चात् उर्वरक सिफारिष करने की विभिन्न विधियाँ प्रचलित है। हमारे देष में सामान्यतः निम्न तीन विधियों का उपयोग प्रचलित है।

उर्वरता समूह विधि (Fertility group method)

इस विधि में मृदा परीक्षण परिणाम तथा उर्वरकों की सामान्य सिफारिष मात्रा का उपयोग किया जाता है। सर्वप्रथम मृदा परीक्षण के आधार पर मृदा को निम्न, मध्यम या उच्च उर्वरता समूह में वर्गीकृत कर लिया जाता है। सामान्य सिफारिष मात्रा (100 % recommended dose) मध्यम उर्वरता समूह के लिये दी जाती है। तत्पष्चात् निम्न सारणी के अनुसार उर्वरक की मात्रा सिफारिष की जाती है।

सारणी : उर्वरता समूह विधि द्वारा उर्वरक सिफारिष

उर्वरक सिफारिष

मृदा का उर्वरता स्तर

निम्न	सामान्य सिफारिष मात्रा + सामान्य सिफारिष मात्रा का 25 प्रतिषत
मध्य	सामान्य सिफारिष मात्रा
उच्च	सामान्य सिफारिष मात्रा से 25 प्रतिषत कम

यद्यपि उपरोक्त विधि मृदा परीक्षण परिणामों के लिये संवेदनषील नहीं है परन्तु यह सामान्य सिफारिष मात्रा को मृदा के उपलब्ध तत्वों के आधार पर कम या अधिक करने का आधार प्रदान करती है। उपयोग में अत्यंत सरल होने के कारण यह किसी भी प्रयोगषला के द्वारा समस्त फसलों व मृदाओं के लिये उपयोग की जा सकती है।

क्रांतिक स्तर विधि (Critical level method)

इस विधि में मृदा उर्वरता स्तर के आधार पर मृदाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। विभाजन स्तर को मृदा का क्रांतिक स्तर कहा जाता है। ऐसी मृदायें जिनका उर्वरता स्तर इस क्रांतिक स्तर से कम हो उनमें उर्वरक उपयोग के लाभकारी परिणाम प्राप्त हो सकते है परन्तु जिन मृदाओं का स्तर क्रांतिक उर्वरता स्तर से अधिक होता है उनमें उर्वरक उपयोग के लाभकारी परिणाम प्राप्त होने की संभावना कम होती है। इस तरह यदि किसी तत्व का मृदा क्रांतिक स्तर ज्ञात हो तो मृदा परीक्षण द्वारा मृदा का स्तर ज्ञात कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मृदा में उर्वरक उपयोग किया जाना चाहिये अथवा नहीं। इस विधि द्वारा उर्वरक की उपयोग की जाने वाली मात्रा का निर्धारण नहीं होता है अपितु केवल यह ज्ञात होता है कि उर्वरक उपयोग किया जाये या नहीं। अतः यह विधि सामान्यतः सूक्ष्म पोषक तत्वों के लिये उपयोग की जाती है क्योंकि सूक्ष्म पोषक तत्वों के उर्वरक कम मात्रा में आवष्यक होते हैं तथा एक ही मात्रा सामान्यतः सिफारिष की जाती है।

लक्षित उपज विधि (Targated yield method)

मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक सिफारिष की यह सर्वोत्तम विधि मानी जाती है। इस विधि में मृदा से उपलब्ध तत्वों तथा फसल की तत्व आवष्यकता के आधार पर सिफारिष प्रदान की जाती है। यह विधि मृदा परीक्षण परिणामों के लिये उर्वरता समूह विधि से अधिक संवेदनषील है तथा उपयोग किये जाने वाले उर्वरक की मात्रा भी निर्धारित करती है। इस तरह उपरोक्त दोनों विधियों के दोष इस विधि में दूर कर दिये गये है। लक्षित उपज विधि से उर्वरक सिफारिष हेतु निम्न तथ्यों की जानकारी आवष्यक होती है।

1. फसलों की तत्व आवष्यकता (NR, Nutrient Requirement)

विभिन्न प्रयोगों से यह तथ्य प्रमाणित हुआ है कि किसी विषिष्ट उपज की प्राप्ति हेतु पौधों द्वारा एक निर्धारित तत्व मात्रा का शोषण आवष्यक होता है अर्थात् यह कहा जा सकता है कि तत्वों की उपयोग की गयी विषिष्ट मात्रा एक निर्धारित उपज प्रदान करने में सक्षम होती है। इस आधार पर किसी फसल का इकाई उत्पादन प्राप्त करने हेतु शोषित किये जाने वाले तत्वों की मात्रा निम्न प्रकार से निर्धारित की जा सकती है।

तत्व आवष्यकता (कि.ग्रा. तत्व/क्वि. उपज)	=	कुल शोषित तत्व(कि.ग्रा./हे.) / डपज (क्वि./हे.)

विभिन्न फसलों की तत्व आवष्यकता सारणी में दी गयी है। इसकी इकाई कि.ग्रा./क्वि. है जिसका तात्पर्य यह होता है कि तत्व की कि.ग्रा. में वह मात्रा जो एक क्वि. उत्पादन हेतु पौधों द्वारा मृदा से शोषित की जाती है।

विभिन्न फसलों की तत्व आवष्यकता (कि.ग्रा./क्वि.)

फसल	तत्व आवष्यकता		
	नेत्रजन (N)	स्फूर (P)	पोटाष (K)
धान	1.5	0.40	1.8
गेहूँ	2.3	0.42	2.2
सरसों	5.2	0.75	1.4
सोयाबीन	7.3	0.31	1.5

2. मृदा की तत्व प्रदान करने की क्षमता (Es, Efficiency of soil)

मृदा के रासायनिक परीक्षण से प्राप्त तत्व मात्रा का संपूर्ण भाग पौधे नहीं ले पाते है वरन् इनका एक आंषिक भाग ही पौधों द्वारा शोषित किया जाता है। इससे तात्पर्य यह है कि यदि मृदा परीक्षण नेत्रजन की मृदा में मात्रा 250 कि./है. बताता है तो इसका केवल कुछ भाग ही पौधे को उपलब्ध होता है। अतः मृदा द्वारा प्रति इकाई उपलब्ध तत्वों की वास्तविक तत्व प्रदान करने की क्षमता का निर्धारण आवष्यक होता है। इसे अनुसंधान द्वारा निम्न तरह प्राप्त किया जाता है।

मृदा की तत्व प्रदान क्षमता (प्रतिषत)		फसल द्वारा केवल मृदा से शोषित तत्व की मात्रा / मृदा परीक्षण द्वारा प्राप्त तत्व की मात्रा	x 100

3. उर्वरक उपयोग क्षमता (Ef, Efficiency of fertilizer)

जिस तरह मृदा परीक्षण द्वारा प्राप्त तत्व की मात्रा का पौधे पूरी तरह उपयोग नहीं कर पाते उसी तरह उर्वरकों के माध्यम से मृदा में दिये जाने वाले तत्वों की मात्रा का भी कुछ ही अंष पौधे उपयोग कर पाते है। अतः उर्वरक की उपयोग क्षमता का निर्धारण भी आवष्यक होता है। इसका मूल्यांकन निम्न तरह किया जाता है।

उर्वरक उपयोग क्षमता (प्रतिषत)		फसल द्वारा उर्वरक + मृदा से शोषित तत्व की मात्रा / उपयोग किये गये उर्वरक की मात्रा	x 100

लक्षित उपज समीकरण का निर्धारण :

किसी परिस्थिति विषेष के लिये उपरोक्त तीन तथ्यों की प्रयोगों द्वारा जानकारी उपलब्ध होने पर लक्षित उपज (Targated yield, Y) के लिए मृदा परीक्षण (Soil test value, STV) के आधार पर उर्वरक सिफारिष (Fertilizer Nitrogen, FN) प्राप्त करने के लिये एक समीकरण बनाया जाता है।

$$FN = NR \times Y - STV \quad \text{----------(1)}$$

चूँकि मृदा परीक्षण द्वारा प्राप्त तत्व मात्रा का समस्त भाग पौधों को उपलब्ध नहीं होता है, अतः यदि मृदा की तत्व प्रदान करने की क्षमता (Es) से STV को गुणा कर दे तो मृदा से तत्वों की वास्तविक उपलब्ध मात्रा ज्ञात हो जाती है। इसके पष्चात् यह वास्तविक मात्रा उस तत्व के

उर्वरक की कितनी मात्रा के तुल्य होगी यह ज्ञात करते है। इसके लिये (STV x Es) के गुणनफल को उर्वरक उपयोग क्षमता (Ef) से विभाजित किया जाता है और समीकरण 1 का निम्न नया स्वरूप प्राप्त होता है।

$$FN = NR \times Y - STV \times Es / Ef \quad \text{----------} \quad (2)$$

उपरोक्त समकीकरण में (NRxY) की मात्रा किसी उपज विषेष के लिये पौधों द्वारा शोषित की जाने वाली कुल तत्वों की मात्रा को प्रदर्षित करती है। इस मात्रा के तुल्य उर्वरक मात्रा ज्ञात करने के लिये (NRxY) गुणनफल को उर्वरक उपयोग क्षमता (Ef) सें विभाजित करने पर हमें लक्षित उपज समीकरण प्राप्त हो जाता है।

$$FN = NR \times Y / Ef - STV \times Es / Ef \quad \text{---------(3)}$$

उपरोक्त समीकरण 3 को निम्न तरह पुर्नव्यवस्थित किया जा सकता है।

$$FN = (NR / Ef) \times Y - (Es / Ef) \times STV \quad \text{------- (4)}$$

समीकरण (4) की NR/Ef तथा Es/Ef मात्रायें अनुसंधान प्रयोगषाला द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। समीकरण का बायॉ भाग किसी उपज विषेष के लिये कुल तत्व की मात्रा उर्वरक के रूप में बताता है तथा दाहिना भाग मृदा से प्राप्त होने वाले तत्व की मात्रा उर्वरक के रूप में प्रदर्षित करता है। इन दोनों का अन्तर तत्व की वह मात्रा होती है जिसे उर्वरक के रूप

में सिफारिष किया जाना है। इस तरह मृदा परीक्षण प्रयोगषाला में मृदा का परीक्षण कर STV मात्रा ज्ञात कर ली जाय तथा यदि लक्षित उपज का निर्धारण कृषक की आर्थिक अवस्था के आधार पर किया जाय तो उपरोक्त समीकरण से मृदा परिक्षण आधारित उर्वरक सिफारिष की जा सकती है। विभिन्न फसलों एवं मृदाओं के लिये उपयोगी समीकरण सारणी में दिये गये है इनमें विभिन्न मृदा परीक्षण मात्रा एवं उपज के लिये उर्वरकों की मात्रा की गणना की जा सकती है।

सारणी : विभिन्न फसलों के लिये उपयोगी लक्षित उपज समीकरण

फसल	मृदा उर्वरक	उर्वरक समीकरण
धान (भगवती)		FN = 5.01 T – 0.32 SN - 0.72CN FP_2O_5 = 1.54 T – 1.23 SP_2O_5-0.17 CP_2O_5 FK_2O = 1.91T – 0.21 SK_2O -0.29CK_2O
गेहूँ (एच.डी. 2733)		FN = 7.98 T – 0.69 SN - 0.75 CN FP_2O_5 = 1.52 T – 1.29 SP_2O_5-0.22 CP_2O_5 FK_2O = 1.80 T – 0.34 SK_2O -0.22 CK_2O
मक्का (देवकी)		FN = 4.12 T – 0.39 SN - 0.70 CN FP_2O_5 = 0.74 T – 1.26 SP_2O_5-0.30 CP_2O_5 FK_2O = 1.20 T – 0.25 SK_2O -0.16CK_2O
सरसों (सी.भी. क्रांति)		FN = 6.45 T – 0.20 SN - 0.30 CN FP_2O_5 = 2.16 T – 1.42 SP_2O_5-0.34 CP_2O_5 FK_2O = 2.78 T – 0.10 SK_2O -0.50CK_2O

T = लक्षित उपज क्विं/हे.	FN = उर्वरक नेत्रजन, FP_2O_5 = उर्वरक स्फूर कि.ग्रा./हे. FK_2O = उर्वरक पोटाष कि.ग्रा./हे.
SN = नेत्रजन की मृदा परीक्षण मात्रा कि.ग्रा./हे. S P_2O_5 = स्फूर की मृदा परीक्षण मात्रा कि.ग्रा./हे. SK_2O = पोटाष की मृदा परिक्षण मात्रा कि.ग्रा./हे.	CN = कम्पोस्ट नेत्रजन की मात्रा प्रतिषत C P_2O_5= कम्पोस्ट स्फूर की मात्रा प्रतिषत SK_2O = कम्पोस्ट पोटाष की मात्रा प्रतिषत